वातायन
vatayan

वातायनम्

अप्रैल-जून 2026
अंक - 05

वातायन यूरोप की त्रैमासिक पत्रिका

दास्तानगोई: नासिरा शर्मा

कहानी: दीपक शर्मा, देवी नागरानी

इस माह के कलाकार/कवि: विज्ञान वृत

कविता: विज्ञान वृत, शहंशाह आलम, मीनकेतन प्रधान

लघु कथा: डॉ. ऋचा शर्मा ,संध्या प्रकाश

निबंध: प्रो. मधु चतुर्वेदी, शैली

आलेख: बालेन्दु शर्मा दाधीच, विवेक रंजन श्रीवास्तव

व्यंग्य: प्रभात गोस्वामी: नेता जी का मर कर भी जीना

स्थाई स्तम्भ: साक्षात्कार: प्रो. अनामिका: प्रो. रेखा सेठी
छन्द-सलिला: मधु चतुर्वेदी
व्याकरण पुराण: अशोक बत्रा
नटखट नगरी, स्वास्थ्य, फ़िल्म समीक्षा

अंतरराष्ट्रीय साहित्य: डच कहानी/ कविताएँ: डॉ ऋतु शर्मा ननंन पाँडे

आंचलिक: जनकवि मो. सदीक भाटी

अंग्रेज़ी साहित्य: Dr. Achala Sharma, Dr. Ankit Agrawal, Ajay Jugran

आवरण चित्र- विज्ञान व्रत

वातायनम्- वसुधैव कुटुम्बकम् - वैश्विक साहित्यिक परिवार
(A Global Literary Family)

संरक्षक
डॉ. पद्मेश गुप्त

प्रमुख संपादक
दिव्या माथुर

प्रबंध संपादक
अर्पणा संत सिंह

संपादक - भाषा व अभिव्यक्ति
प्रो. राजेश कुमार

संपादन सहयोग
प्रो. रेखा सेठी
डॉ. वंदना मुकेश
आराधना झा श्रीवास्तव (आंचलिक)
अजेय जुगरान (अंग्रेज़ी)
ऋचा जैन (विश्व साहित्य)

क्रिएटिव मार्केटिंग मैनेजर
अंतरीपा ठाकुर मुखर्जी

वेब/तकनीकी विशेषज्ञ
शिवि श्रीवास्तव

कोषाध्यक्ष
एडवर्ड क्रास्क

सलाहकार
मीरा मिश्रा कौशिक, ओ.बी.ई.
डॉ. निखिल कौशिक
तितिक्षा दंड शाह

भारत में प्रतिनिधि
प्रो. मधु चतुर्वेदी

युद्ध, संघर्ष और महामारी के दौर में साहित्यिक और सांस्कृतिक सौहार्द के सेतु के रूप में - वैश्विक साहित्यिक परिदृश्य में नई प्रासंगिकता के साथ साहित्य की आत्मा सभी को एक सूत्र में बाँध देती है, जहाँ भाषा, भूगोल और सांस्कृतिक सीमाएँ गौण हो जाती हैं। साहित्य, कला और दर्शन में शांति, सहिष्णुता और विविधता के विचारों का अन्वेषण, जिनमें साझा मानवता का संवाद है, तथा करुणा, संघर्ष, प्रेम, विस्थापन, स्मृति, पहचान और बेहतर भविष्य की आकांक्षा है। इस संवाद में हर लेखक, हर कलाकार, हर पाठक इस वैश्विक परिवार का अभिन्न अंग है।

वातायनम् का लक्ष्य है, अतीत की प्रेरणादायक रचनात्मक धरोहर, वर्तमान की आधुनिकता और नवीन प्रयोगधर्मिता की अनुभूतियों की सम्मिलित अभिव्यक्ति - जो भविष्य के लिए धरोहर हो, सेतु बने। हमारा प्रयास रहेगा कि वातायनम् केवल पारंपरिक साहित्य तक सीमित न रहे, बल्कि वह नए लेखन और नई प्रौद्योगिकी के साथ कदम से कदम मिलाकर विश्व की अन्य भाषाओं और साहित्य के साथ वैश्विक मंच स्थापित कर सके।

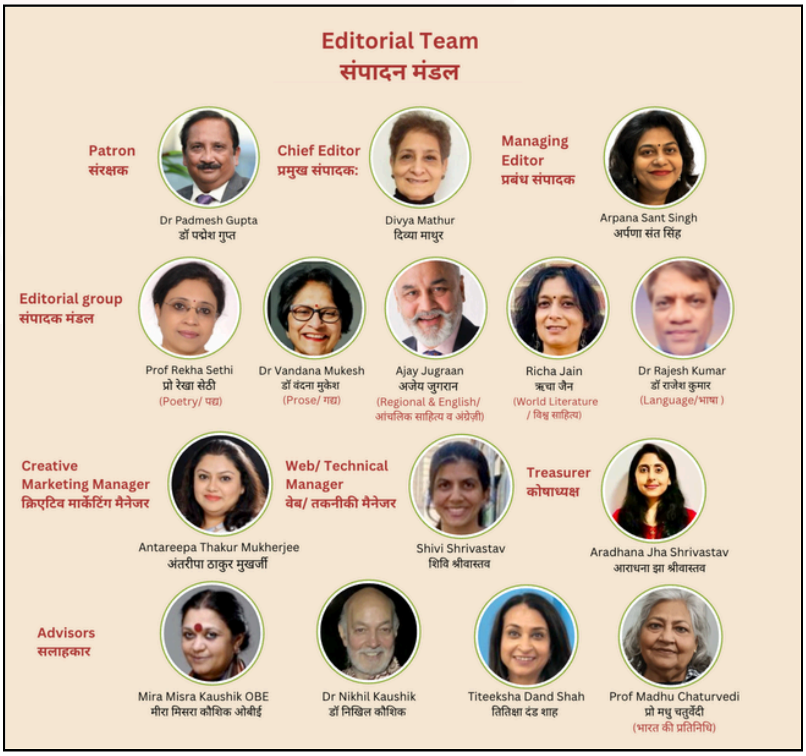

वेबसाइट: www.vatayaneurope.com, **यू-ट्यूब:** www.youtube.com/@vatayanuk
ई-मेल: vatayaneurope@gmail.com

वातायनम् में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने है,उससे वातायनम् टीम का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।
पत्रिका में प्रकाशित तस्वीरें गूगल, पिनटेरेस्ट और अन्य अंतरजाल संसाधनों से साभार ली गई हैं।

अनुक्रम

संपादकीय 4

क़िस्सागोई:
एशिया महाद्वीप में क़िस्सागोई की
दास्तानगोई: नासिरा शर्मा 5

कहानी:
दीपक शर्मा: कुंती का खेल 8
देवी नागरानी: जंग जारी है 12

इस माह के कलाकार/कवि: विज्ञान वृत का परिचय.. 16

कविता:
विज्ञान वृत: ग़ज़लें 17
शहंशाह आलम: तुम हो तो, युद्ध जब भी
लड़ा जाता है 18
मीनकेतन प्रधान: करु काल, मुखौटे, प्रवास 19
राजवर्धन आज़ाद: बीमार है मुल्क 27

लघु कथा:
डॉ ऋचा शर्मा: भात 20
संध्या प्रकाश: लालसा 20
नील मणि: पापा, ऐसा है 48

निबंध:
प्रो मधु चतुर्वेदी: ऑर्गेज़्म के जंगल मे भटकता प्रेम 21
शैली: निर्धनता का पोषक: हिन्दी साहित्य 24

आलेख:
बालेन्दु शर्मा दाधीच: परिवर्तन चहुँओर: हर पेशे में
आएगी ए.आई की चुनौती 28
विवेक रंजन श्रीवास्तव: स्वर्गीय नरेंद्र कोहली
की याद में 31

लेख:
मनोज कुमार रजक: हिंदी काव्य में पर्यावरण 34

व्यंग्य:
प्रभात गोस्वामी: नेता जी का मर कर भी जीना 37

पुस्तक समीक्षा:
डॉ. राजवर्धन आज़ाद की पुस्तक
'नीम का शहद' 40

स्थायी स्तम्भ:
साक्षात्कार: प्रो अनामिका: प्रो रेखा सेठी 41
छन्द-सलिला: प्रो मधु चतुर्वेदी: कुंडली 46
व्याकरण पुराण: डॉ अशोक बत्रा: भाषा शुद्ध
विज्ञान नहीं 47
नटखट नगरी:
कहानी: ललित शौर्य: अमलतास का रहस्य 49
कविता: डॉ कृष्णा कुमारी: ओल्ड एण्ड न्यू 50
सम्राट समीर: चंदा मामा 51
दिशा ग्रोवर: डॉलू-चैरी के नानू 51
स्वास्थ्य: डॉ विकास सिंह: खुरटि: नज़र अंदाज
ना करें 52
फ़िल्म समीक्षा: तिथि दानी: धुरंधर 54

अंतरराष्ट्रीय साहित्य:
डॉ ऋतु शर्मा ननंन पाँडे: डच लोककथा
'चुहिया की शादी' 56
हेंड्रिक मार्समैन की कविताओं का अनुवाद 61

आंचलिक:
कौसर भुट्टो: राजस्थानी जनकवि मो. सदीक भाटी 62
भोजपुरी साहित्य: आशुतोष पथिक 64
रिंकी सिंह 65
मैकेश मिथिलेश 67
सिद्धार्थ सिंह साहिल: कविता: बिन बेआहल माई 68

अंग्रेज़ी साहित्य:
Dr Achala Sharma's story: Meharchand's
Prayer 69
Book Review: The Elsewhereans: A
Documentary Novel by Jeet Thayil 76
Travel: Dr. Ankit Agrawal: Sunrise at Dong
of Arunachal Pradesh 78
Children's Science Fiction: Avaneesh
Gunjal: Harry the Water Droplet and the
Hydrological Circle 83

आपने लिखा है... 84

संपादकीय

प्रिय पाठको,

वातायनम् के इस पाँचवें अंक का सुंदर आवरण-चित्र सुप्रसिद्ध कवि और पेंटर विज्ञान वृत जी ने बनाया है, जिनकी चार ग़ज़लें भी इस अंक में सम्मिलित की गयी हैं - हमारा प्रयत्न रहता है कि पाठकों के लिए हम जाने-माने चित्रकारों के लेखकीय पक्ष को भी उजागर करें।

हमें आपके बहुत से पत्र प्राप्त होते रहते हैं, कुछ चुनिंदा पत्र इस अंक में प्रकाशित किये जा रहे हैं। आपसे अनुरोध है कि कृपया लिखते रहें, ताकि हमें आपसे प्रेरणा और मार्गदर्शन मिलता रहे। प्रसन्नता यह है कि हमें अपेक्षित सामग्री बहुलता में प्राप्त हुई है, आशा है कि लेखक हमारी सीमाओं को समझ सकेंगे। नासिरा शर्मा की 'दास्तानगोई' और प्रो अनामिका जी से प्रो रेखा सेठी का साक्षात्कार (भाग-2) बहुत पसंद किये गए। इस अंक में प्रस्तुत हैं, दीपक शर्मा और देवी नागरानी की कहानियाँ; शहंशाह आलम और मीनकेतन प्रधान की कविताएं; डॉ ऋचा शर्मा और संध्या प्रकाश की लघु कथाएं, बालेन्दु शर्मा दाधीच, प्रो मधु चतुर्वेदी, शैली, विवेक रंजन श्रीवास्तव और मनोज कुमार रजक के आलेख; प्रभात गोस्वामी का व्यंग्य और डॉ राजवर्धन आज़ाद की पुस्तक 'नीम का शहद' की समीक्षा।

स्थाई स्तंभों में सम्मिलित हैं: प्रो मधु चतुर्वेदी का 'छन्द-सलिला', डॉ अशोक बत्रा का 'व्याकरण पुराण'; नटखट नगरी में ललित शौर्य, डॉ कृष्णा कुमारी, सम्राट समीर और दिशा ग्रोवर की रचनाएं; स्वास्थ्य के अंतर्गत डॉ विकास सिंह का 'खुर्राटे', तिथि दानी की फ़िल्म समीक्षा, डॉ ऋतु शर्मा ननंन पाँडे द्वारा प्रस्तुत डच लोककथा और हेंड्रिक मार्समैन की कविताओं का अनुवाद। आंचलिक साहित्य में राजस्थानी जनकवि मो. सदीक भाटी पर आलेख, भोजपुरी साहित्य: आशुतोष पथिक, रिंकी सिंह, मैकेश मिथिलेश और सिद्धार्थ सिंह साहिल द्वारा भोजपुरी रचनाएं। अंग्रेज़ी साहित्य के अंतर्गत डॉ अचला शर्मा की कहानी, जीठ थियाल की पुस्तक समीक्षा, डॉ अंकित अग्रवाल का आलेख और अवनीश गुँजल की बाल विज्ञान कथा।

अपनी मौजूदा भारत यात्रा के दौरान बहुत से महोत्सवों में आमंत्रित किये जाना मेरे लिए बड़े सौभाग्य की बात है – काशी हिंदू विश्वविद्यालय-बनारस द्वारा आयोजित 'नामवर सिंह: आलोचना एवं वैचारिकता', श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय-कालाड़ी द्वारा आयोजित 'समकालीन उपन्यास: महत्व एवं चुनौतियाँ', कोच्चि विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय (कुसाट) द्वारा आयोजित 'समकालीन हिंदी कथा साहित्य'; सेंट पीटर्स विश्वविद्यालय-कौलनचैरि-केरल द्वारा आयोजित समारोह, सीहोर लिटरेचर फ़ेस्टिवल-सिद्धपुर, दुष्यंत संग्रहालय-भोपाल द्वारा आयोजित फागोत्सव – कितना कुछ सीखने को मिला, ऐसे ही अनुभवों ने मुझे बनाया है, जिन्हें अपने पाठकों से साझा करते हुए मुझे अपनी यात्राओं की सार्थकता पर गर्व होता है। अंत में, वातायनम् द्वारा आयोजित पाक्षिक 'साहित्य संवाद' के अंतर्गत हम अब तक तीन प्रतिष्ठित लेखिकाओं को प्रस्तुत कर चुके हैं – सूर्यबाला, नासिरा शर्मा और गीता श्री – आगे भी हम श्रेष्ठ कथाकारों से साथ कार्यक्रम जारी रखेंगे।

आपकी प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी।

शुभकामनाओं सहित एवं सस्नेह,

दिव्या माथुर

एशिया महाद्वीप में क़िस्सागोई की दास्तानगोई

कुछ यादें... कुछ हकीकतें!

नासिरा शर्मा

साहित्य अकादमी और व्यास सम्मान से पुरस्कृत लेखिका, संपादक, अनुवादक, फ़िल्म-निर्माता

nasera.sharma@yahoo.co.in

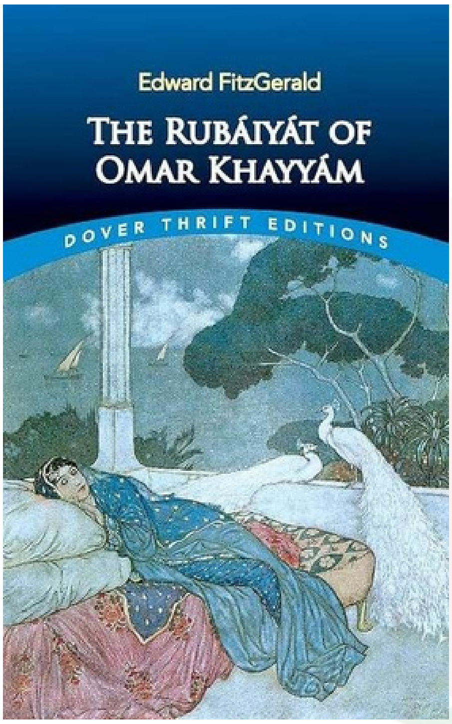

कुछ ग्रन्थ ऐसे होते हैं जिनका साहित्यिक महत्व उनकी अपनी भाषा में होता है और कुछ ऐसी रचनाएँ होती हैं जो भाषा की सरहदें पार कर सार्वभौमिक हो जाती हैं और उनका प्रभाव शताब्दियों तक चलता रहता है। उन से कई तरह के क़िस्से भी जुड़ जाते हैं और वे किस्से कुछ जोड़ कुछ घटा कर निरंतर अपनी यात्रा तय करते दास्तानगोई में बदल जाते हैं जैसे उमर ख़य्याम की रूबाइयाँ हैं।

दिलचस्प बात यह है कि जिसने कभी शराब नहीं पी उसने मयनोशी पर शेर लिख डाले। उनके शेरों या कहें रूबाइयों पर ईरान के अनेक चित्रकारों ने एक से बढ़कर एक आयल पेंटिंग बनाई। ज़्यादातर ऐसा होता नहीं है कि दो कलाएँ एक दूसरे की पूरक बन जाएँ। जो पेंटिंग मेरे घर में लगी है उसके नीचे जो शेर लिखा है उसका अर्थ यह है कि जब मरने के बाद यही सब करना है तो क्यों न इस दुनिया में वही सब कर लिया जाए।

ख़य्याम के यहाँ सूफ़ी रंग, जीवन दर्शन और रूढ़िवादी विचारों को चुनौती देते विचार नज़र आते हैं। उनके यहां प्रेम और मृत्यु पर गहरे विचार पढ़ने को मिलते हैं।

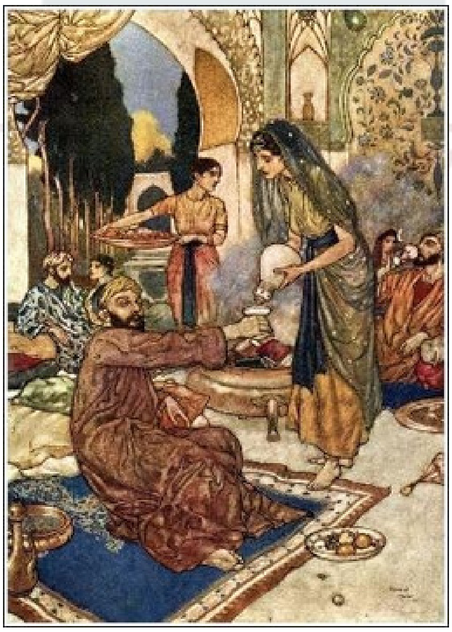

ख़य्याम महान गणितज्ञ थे, जिन्होंने विशेष रूप से बीज गणित पर काम किया। उनका पूरा नाम फतह इब्न इब्राहिम अल खय्याम था, उनकी मृत्यु 4 दिसंबर 1731 में हुई। लंदन की प्रसिद्ध कंपनी SANGORSKI SUTCIIEFE ने चमड़े की जिल्दसाज़ी के साथ पूरे दो वर्ष लगा

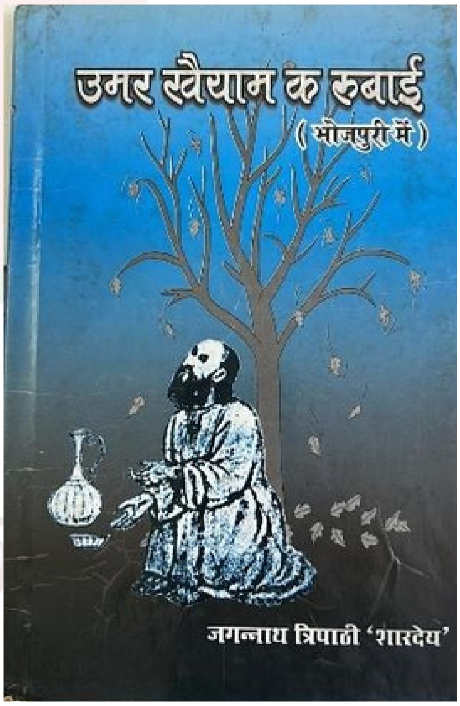

कर इस दीवान को 'द ग्रेट उमर' के नाम से तैयार किया था; सौ से अधिक मूल्यवान नगीनों जैसे पन्ना, रूबी और पुखराज इत्यादि से उसे सजाया था। अमेरिका के एक खरीदार ने इसे नीलामी में खरीदा था

और वह उसे टाइटैनिक के ज़रिए न्यूयॉर्क ले जा रहा था। कश्ती डूबी तो उमर ख़ययाम की रूबाइयात समंदर तल में समा गई। इसके बाद इसका दूसरा संस्करण 1930 के दशक में आया और द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान लंदन पर हुई बमबारी के दौरान जल गया। कुछ इस से मिलती जुलती कहानी 'शाहनामा' को लेकर कहीं पढ़ने को मिली थी जिस में शाहनामा के पुस्तक का आकार और वज़न भी दिया गया था। वैसे भी शाहनामा इस तरह के शानदार कारनामों के लिए

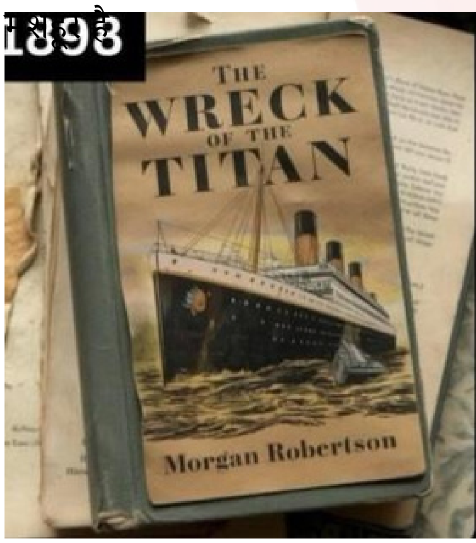

जहाज के डूबने से 14 वर्ष पहले लेखक मार्गन रॉबर्टसन ने 1898 में जो उपन्यास 'फ्यूटिलिटीज़ आर द रेंक आफ़ द टाइटन' के नाम से लिखा जिसमें ऑनलांटिक में एक जहाज हिमखंड से टकराने से डूबता है उस में हूबहू वही सब ब्यान था जो 1912 में टाइटैनिक के डूबने का सच सामने आया था। कश्ती की लंबाई चौड़ाई और दूसरे ब्योरे ठीक वैसे थे। यह हादसा ठीक चौदह साल बाद हुआ जिस पर एक लोकप्रिय फिल्म का निर्माण भी हुआ! ये सारी सूचनाएँ, घटनाएँ और यथार्थ मिल कर एक क़िस्सा बन गई हैं और हम इसको जब आपस में साझा करते हैं तो वह बयान कुछ दास्तानगोई जैसा हो जाता है।

मुझे याद आता है कि कानपुर से एक शख्स, जो किसी सिनेमा हाल के मालिक थे, मुझसे मिलने आए और ख्वाहिश ज़ाहिर की, "आप उमर खय्याम पर फिल्मी पट–कथा लिखें और उसे शराबी दिखाएं जो हरदम नशे में धुत्त हो। मैंने इंकार करते हुए कहा कि जिसने कभी शराब पी नहीं उसे मैं शराबी कैसे बना सकती हूँ। उसपर उन्होंने मुँह माँगी रकम देने की बात उठाई और कहा, "लेखक, सब कुछ कर सकता है आप इस पर सोचिएगा। मैंने इस घटना का ज़िक्र चंद वर्ष पहले अपनी फ़ेसबुक वाल पर किया भी था। अपनी इस तरह की शायरी की बाबत ख़ुद उमर ख़्य्याम कहते हैं:

गोयन्द मरा कि मय–परस्तम हस्तम
गोयन्द मरा आरिफ़–ओ–मस्तम हस्तम
दर ज़ाहिर–ए–मन निगाह–ए–बिस्यार मकुन
कि अंदर बातिन न चुनाँ कि हस्तम हस्तम

(लोग मुझे कहते हैं और बिलाशुबहा मैं ऐसा हूँ। सब के सब मुझे मस्त व मतवाला कहते हैं। उनकी बात भी ठीक है। लेकिन मेरी बाहरी कैफियत पर ध्यान मत दो। वजह यह है कि अंदर से मैं जैसा हूँ वैसा हूँ।) उनकी फ़ारसी रूबायात का एडवर्ड फिटज़र ने बेहतरीन अनुवाद किया है जो बाक़ी अनुवादों में बेहतर माना गया है।

A Book of verses
underneath the bough
A jug of wine, a leaf of
bread and
Thou beside me singing in
the wilderness
Oh, Wilderness were
Paradise enow!

जनीश मंगा ने इस रुबाई का हिंदी में कुछ ऐसा अनुवाद किया है:

किसी वृक्ष की छाया हो, ग़ज़लों से ख़तो-किताबत हो
मदिरा पात्र हो, भोजन हो व प्रिय तुम्हारी सोहबत हो
साथ मेरे यदि स्वर–लहरी तुम छेड़ सको निर्जन वन में
फिर नहीं असंभव निर्जन वन ही हम जैसों की जन्नत हो।

इसी रूबाई का अंग्रेज़ी से भोजपुरी में जगन्नाथ त्रिपाठी 'शारदेय' ने किया है। उनकी पुस्तक 'उमर खय्याम की रूबाई (भोजपुरी में) हेम प्रकाशन गोंडा से प्रथम संस्करण अप्रैल

2006 में हुआ था। उन्होंने पुस्तक में खय्याम की शायरी पर बहुत महत्वपूर्ण जानकारियाँ उपलब्ध कराई हैं। उसी अंग्रेज़ी रूबाई का भोजपुरी अनुवाद देखें:

डरिया क छांह इहां एगो रोटिया
घइलिया सराब क, कबित क कितबिया
आ तूं मोरे लगवां गावेलू ए निचटवां
पुरहर सरग बा इहे सुनसनवा!

ख़य्याम की दूसरी रूबाई का अंग्रेज़ी व भोजपुरी अनुवाद देखिए:

Look to the Rose that
blows about us
Lo, Laughing, she says,
'into the World I blow:
At once the silken Tessel of
my Purse
Tear, and its Treasure on
the Garden throw.

खिलल गुलाब जौन बाटे चारू ओरिया
हंसी हंसी सबके बतावेला इ बतिया
देख, हम दुनिया में जब खिली जाईला
रेसम क बटुआ अपन फारि नाईला,
ओकर खजाना हम बगिया के बिचवां
खुसी खुसी छीटीला, उड़ाईला, लुटाईला।

बच्चन जी की मधुशाला को रुबाइयात का अनुवाद बताया जाता है, मगर मुझे ऐसा लगा नहीं लेकिन प्रेरणा उनको मिली होगी। रुबाइयात उमर ख़य्याम का हिंदी अनुवाद मैथिलीशरण गुप्त ने किया था जो प्रकाशन पुस्तकालय कानपुर से छपी थी।

अये प्रिय यह प्याला भर दो, जमने दो तुम इसका रंग,
करता है जो वर्तमान में भूत–भविष्य–भावना संग।
आगामी कल की चर्चा क्यों? आगामी कल तो सहसा,
हो सकता हूँ मैं गत कल की सत्तर शताब्दियों के संग।
मिट्टी में मिलने से पहले और अधिक क्या जाए कहा
उसे भोग लो, व्यय होने से, जो अब भी है शेष रहा!
धूलि धूलि में मिल जायेगी, धूलि तले सोना होगा,
गीत न गायक, सुरा न साक़ी
और न कोई अवधि इहा!

मैथिलीशरण गुप्त ने उर्दू के कवि से फ़ारसी के शेर को समझा और फ़ारसी से अनुवाद किया। उर्दू के अलावा संस्कृत में भी ख़य्याम की रुबाइयात का अनुवाद हुआ है। इस बीच विश्व की अनगिनत भाषाओं में भी अनुवाद हुए हैं।

एक शायर की रचना का क़िस्सा कितना दिलचस्प बना और दास्तानगोई में ढला।

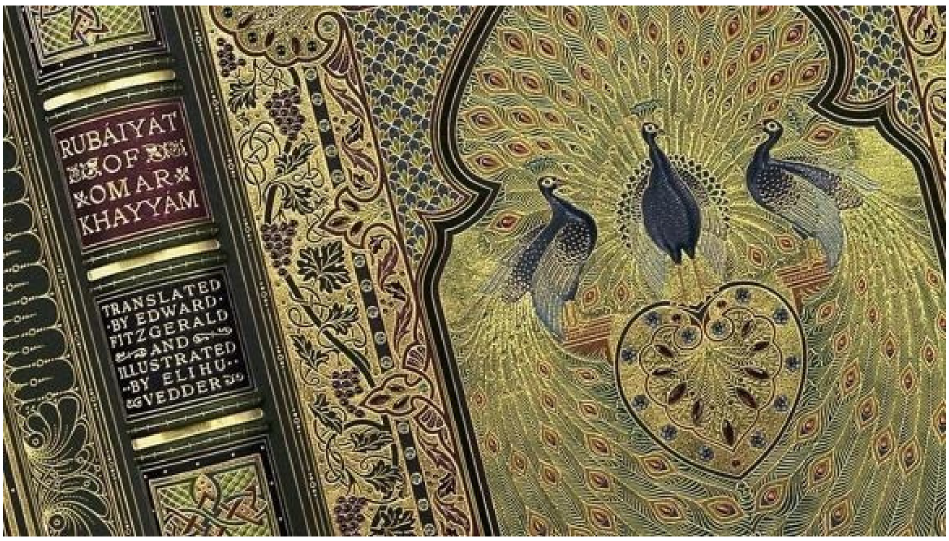

कहानी

कुंती का खेल

दीपक शर्मा

लखनऊ क्रिश्चियन कालेज में तीस वर्ष अध्यापन, अंग्रेज़ी विभाग से अध्यक्षा के पद से सेवा-निवृत्त, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान से साहित्य भूषण सम्मान, वरिष्ठ और पुरस्कृत लेखिका, पच्चीस कथा-संग्रह प्रकाशित।
dpksh691946@gmail.com

कुंती को वह खेल अकस्मात ही सूझा था। टंडन मेम साहब उस समय अपने ग्राहकों के साथ गोल कमरे बनाम अपनी आर्ट गैलेरी में रहीं और कुंती गोल कमरे के उपकक्ष में। दिन में दीर्घावधि के लिए जब भी बेबी सोती, टंडन मेम साहब कुंती को अपने गोल कमरे के उपकक्ष में बुला लेतीं। अपनी आर्ट गैलेरी के कच्चे माल को उस के हाथों चमकाने-दमकाने।

गोल कमरे में जब भी ग्राहक रहते, कुंती स्वछंद महसूस करती। उन कुछेक पलों के लिए टंडन मेम साहब कुंती पर अपना अंकुश ढीला छोड़ देतीं और कुंती का आकाश और काल कुंती के पास लौट आता। अवधि एक समान न रह कर घटती-बढ़ती रहती क्योंकि अपने ग्राहकों के साथ टंडन मेम साहब का हिसाब अजीब जमा-माफ़ी का रहा करता।

अपनी पुराकालीन कलाकृतियों की कालावधि व कौतुक-क्षमता टंडन मेमसाहब अपने ग्राहकों की समृद्धि व बुद्धि के अनुपात से निर्धारित करतीं। एक ही चीज़ के दाम एक ग्राहक को तीन सौ रुपए बतातीं तो दूसरे ग्राहक को तीन हज़ार। एक ही प्रश्न का उत्तर एक ग्राहक को संक्षिप्त मिलता तो दूसरे को विस्तृत। गोल कमरा यदि टंडन मेम साहब की आर्ट गैलेरी थी तो यह उपकक्ष उस की नेपथ्यशाला।

गोल कमरे में प्रदर्शित वस्तुओं की चिकनाई-रगड़ाई तो इस उपकक्ष में सम्पादित होती ही, साथ-ही-साथ नए आए अंगड़-बंगड़ की काया भी यहीं पलटी जाती। किसी बेडौल टूम-छल्ले को रेती से काट कर टंडन मेम साहब इधर चिपकातीं तो दूसरे मटियाले ठीकरे को पोत कर उधर नाथतीं।

तरह-तरह की छोटी-बड़ी, गोल-चौकोर चीज़ों को अपने हाथ के छल-बल से, अलग-अलग ढंग से, टंडन मेम साहब सजाती-संवारतीं और चीज़ें बदल-बदल जातीं।

कुंती उस दिन एक हलाकू फूलदान पर पूरी दोपहर काम करती रही थी। फूलदान टोंटीदार था और टोंटियों के रूप में उन दो घोड़ों की आकृति घनी रगड़ के बाद ही स्पष्ट हुई थी। घोड़ों को देखते ही कुंती अपनी हलाकानी भूल कर विस्मय से भर गई। घोड़े बहुत सुंदर थे। फूलदान के फलक पर कंचाए गए दूसरे नक्काशीदार घोड़ों से ये घोड़े मेल ज़रूर खाते थे परंतु ये घोड़े फूलदान का अंश नहीं थे। अपना अलग अस्तित्व रखते थे। कुंती ने घोड़े समीप से निहारने चाहे। घोड़े अपने बल पर फूलदान को कुंती की पकड़ में रोके रखने में असमर्थ रहे और फूलदान उन से विलग हो कर नीचे कालीन पर गिर गया। कुंती ने लपक कर हानि आंकी।

हानि मरम्मत के अयोग्य न थी। मज़बूत गोंद ने अपनी कारीगरी दिखाई और घोड़े पहले की तरह फूलदान के संग जा चिपके।

कुंती को वह खेल उसी पल सूझा। उस के हाथों में उस खुजली का सूत्रपात उसी पल हुआ, जिस के अंतर्गत उसे गोल कमरे में रखी सभी वस्तुओं को खंडित कर छितराना, और फिर उन्हें पुनर्स्थापित करना अत्यावश्यक लगने लगा। उपकक्ष में रखे सभी औज़ार, सभी चूरे व सभी घोल कुंती के देखे और जाने रहे। उन्हीं को साम्य रख कुंती गोल कमरे से अपना अहेर उपकक्ष में खिसका लाती और सही अवसर मिलते ही उस के अंगों को उस के मुख्य सांचे से पृथक कर खूब हंसती। फिर जब वह

संतुष्ट हो जाती तो उन्हें पुनर्गठित कर संतोषजनक अवस्था में गोल कमरे में वापस पहुंचा आती।

"हमारी बेटी बहुत होशियार है, मेम साहब," दो वर्ष पहले कुंती जब अपने गांव के घर में अपनी मां व तीन छोटी बहनों को तथा अपने गांव के स्कूल में अपनी छठी कक्षा की किताबों व सहेलियों को हमेशा के लिए छोड़ कर इस शहर में इस नौकरी के लिए लिवाई गई थी, तो उस के चपरासी बप्पा ने इन्हीं शब्दों के साथ कुंती को टंडन मेमसाहब से मिलाया था, "यह बेबी का काम संभाल लेगी, मेम साहब। उधर गांव में इस का बहुत नाम रहा। स्कूल की हर कक्षा में इसे हमेशा पूरे-पूरे नंबर ही मिले, कभी आधा नंबर भी कम नहीं रहा...."

"तुम्हारा नाम क्या है?" उस की ओर देख कर टंडन मेमसाहब किसी परी की मानिंद मंद-मंद मुस्करायीं थीं।

"शकुंतला। मगर आप मुझे कुंती के नाम से पुकार सकती हैं। शकुंतला मेरा स्कूल-नेम था..."

"तुम बहुत होशियार हो, शकुंतला," टंडन मेमसाहब ठठा कर हंस दी थीं, "मैं तुम्हें कुंती नहीं कहूंगी। तुम्हें तुम्हारे स्कूल-नेम, शकुंतला के नाम ही से पुकारूगीं..."

"मैं पानी पीना चाहती हूं, मेम साहब।"

"तुम्हें तो भूख भी लगी होगी, शकुंतला।" कुंती ने स्वीकृति में सिर हिलाया था। उस के गांव से यह शहर बहुत दूर रहा था और अम्मा ने पूरी-भाजी की जो पोटली उस के संग रखी थी, वह रास्ते में ही चुक गई थी।

"बावर्ची इस समय डाक्टर साहब का खाना बना रहा है, शकुंतला। तुम्हें खाने के लिए अभी इंतज़ार करना पड़ेगा। यहां सब लोग डाक्टर साहब के खा लेने के बाद ही अपना खाना खाते हैं। सामने रसोई है। तुम बावर्ची से कहना, मैंने तुम्हें भेजा है, तुम्हें तुम्हारे पानी के लिए।"

टंडन साहब उन दिनों सरकारी अस्पताल के हड्डी विभाग के मुख्य थे। और दोपहर का खाना घर पर खाते थे।

पानी पी कर कुंती टंडन मेमसाहब के पास लौटी ही थी कि उन्हों ने एक बदरंग थाली एक कटे हुए नींबू के साथ उसे थमा दी थी।

"बेबी इस समय सो रही है," टंडन मेमसाहब का चेहरा रूखा हो आया था, "तब तक तुम इसे नींबू से रगड़ कर खूब चमकाओ। देखें तुम्हारा काम कैसा है?"

कुंती ने अनिच्छा से थाली पर नींबू रगड़ना शुरू कर दिया था। टंडन मेमसाहब एक किताब पकड़कर कुंती के काम का निरीक्षण करतीं रही थीं। थोड़ी देर बाद बेबी वहां आ पहुंची थी। उस समय वह दो-अढ़ाई साल की रही होगी। बेबी के हाथ में एक टूटी गुड़िया थी जिससे उस ने आते ही टंडन मेमसाहब के सिर पर वार किया था।

"क्या हुआ, बेबी?" अस्त-व्यस्त हो आए अपने बाल टंडन मेम साहब ने संवारे थे।

"ऊ... ऊ... ऊ," बेबी ने अपना प्रहार दोहराया था।

"क्या है?" ताव खाकर टंडन मेमसाहब ने बेबी को एक ज़ोरदार चपत लगायी थी।

बेबी ने गुड़िया ज़मीन पर पटकी थी और हू-हू-हू के साथ ज़मीन पर लोटने लगी थी।

इतने में बाहर एक घंटी बजी थी और बावर्ची रसोई से निकल कर बाहर की ओर लपक लिया था। आगंतुक टंडन साहब थे। बेबी के रोने की आवाज़ उन तक पहुंच ली थी और वह सीधे वहीं चले आए थे। उन्हें देखते ही टंडन मेम साहब बेबी को मनाने लगी थीं, "बेबी, मेरी लाडली बेबी। तुम्हें आज ही तुम्हारे पपा नई गुड़िया दिला देंगे।"

"आज क्या हुआ?" उनके चेहरे पर चिड़चिड़ाहट थी।

"इस की पुरानी गुड़िया ने आज इसे बहुत सताया है," टंडन मेमसाहब ने हंसी छोड़ी थी।

"शट अप। बहुत शर्म की बात है। यह मेरे खाने का समय है और तुम एक बच्ची को नहीं संभाल सकतीं..."
"आप सही कह रहे हैं, बेबी का इस

समय रोना गलत है। बेवक्त है। आए एम सौरी," आंखों में आ रहे आंसू टंडन मेमसाहब ने पीछे धकेल दिए थे, "वैरी सौरी। मगर आज आप जल्दी कैसे आ गए? क्या तीन बजे फिर कोई मीटिंग है?"

"मेरी मीटिंग मेरा हैडेक है। तुम अपने काम से मतलब रखो। मैं अपना काम निपटाना जानता हूं।"

"आप खाना खाइए," अपनी झेंप मिटाने के लिए टंडन मेम साहब फिर हंस दी थीं, "मैं अभी बेबी के पास रहूंगी..."

कुंती की नौकरी के उसी पहले दिन से टंडन मेमसाहब ने बेबी की ज़िम्मेदारी के साथ-साथ उसे गोल कमरे के विविध काम भी सौंप दिए थे। जिन्हें निरंतर संभालना-थामना उस के बूते के बाहर रहा था। अब बेबी का रिबन खुलता अथवा बेबी के खेलने वाले भवन-समूह की कोई दीवार अथवा खिड़की गुम होती, उस की गुड़िया की फ्राक या बालों की चमक मलिन पड़ती अथवा उस के हाथों से कोई चीज़ छूट कर गिरती या टूटती तो बेबी उद्वेलित हो कर उपद्रव करती सो करती ही, साथ में टंडन मेमसाहब भी कुंती को डांटने-डपटने लगती थीं। बेतरह।

तिस पर गोल कमरे के सामान को टंडन मेमसाहब की मनभावन दशा में लाने हेतु कुंती उन की प्रत्येक तरंग, प्रत्येक मौज व प्रत्येक सनक को पूरी करने में अपनी पूरी ताकत लगा कर ग्रहण करने का प्रयास करती भी, तो भी टंडन मेमसाहब कहीं न कहीं उस की चूक पकड़ कर अपनी तुनकमिज़ाजी का ताज़ा उदाहरण उसे देना कभी न भूलतीं।

"मैं यहां नहीं रहना चाहती," कुंती अपने बप्पा से कई बार कहती रही थी, "मुझे यहां कुछ भी अच्छा नहीं लगता। मुझे गांव छोड़ आइए। मैं गांव में रहूंगी।"

"गांव में क्या धरा है?" कुंती के बप्पा उसे हर बार डांट देते थे, "दो-चार साल यहां और काम कर लेगी तो तेरे ब्याह का अच्छा जुगाड़ बन जाएगा। इधर साहब लोग कुछ मदद कर देंगे और उधर लड़का भी सही व कमाऊ मिल जाएगा।"

कुंती का रोग-संचार जबड़े से शुरू हुआ। ऐसा जकड़ा गया मानो वहां कोई ताला पड़ गया था। मांसपेशियों में जो आकस्मिक जकड़न आ बैठी थी, सो अलग। और सांस थी कि लगता था, अभी उखड़ी कि उखड़ी। हिम्मत बांध कर कुंती ने पलंग पर सो रही बेबी को जगाया। साधारण परिस्थिति रही होती तो बेबी को नींद के आवाह-क्षेत्र से बाहर आने में काफ़ी समय लग जाता, परंतु जब बेबी ने कुंती के शरीर को तेज़ हिचकोलों से ऐंठते व मुड़ते देखा तो वह तत्क्षण मां को लिवा लाई। टंडन मेमसाहब ने आते ही पिछले बरामदे की घंटी दबाई। घंटी बंगले के सर्वेंट क्वार्टर में सो रहे कुंती के बप्पा को तत्काल जगाने में सक्षम रही।

"इसे अस्पताल ले चलिए," कुंती की दुर्दशा उस के बप्पा से देखी न गई, "इसे यों कांपते हुए हम ने पहले कभी नहीं देखा। इसे कुछ हो गया तो इस की मां और बहनें रो-रो कर प्राण दे देंगी..."

स्थिति की गंभीरता को देखते हुए टंडन मेमसाहब पति को वहीं बुलवा लिया।

"यह टेटनस का केस मालूम देता है," सधे हुए हाथों से कुंती का निरीक्षण करने के बाद वह बोले, "बुखार बहुत तेज़ है और हाथ में अंगूठे के पास एक पंक्चर वुंड है। खरोंच गहरी है और छिलन संगीन। कांटे जैसी कोई नुकीली चीज़ धंस कर अंदर टूट गई है। बचाने के लिए क्यूरेर व औक्सीजन भी चाहिए। अस्पताल ले जाना होगा..."

अस्पताल में कुंती के पहुंचते ही उसे क्यूरेर का इंजेक्शन दिया गया, जिस ने शनैः-शनैः कुंती की मांसपेशियों की सिकुड़न, ऐंठन व थरथराहट रोक दी। उसी के चलते वेंटिलेटर की पौज़िटिव प्रैशर मशीन उस के फेफड़ों में लगातार हवा भी पहुंचाने लगी और कुंती के हाथ के घाव वाले स्थान पर चीर दिया गया। चीर के बाद जो टुकड़े एकत्रित हुए वे हरे एनैमल व लोहे के थे। टुकड़ों को देख कर टंडन मेमसाहब की चिंता बौखलाहट में बदल गई और वह तुरंत घर लौट आईं।

गोल कमरे में हरे एनैमल का सब से कीमती पात्र एक पोर्सिलेन जग का था। फ्रांसिसी क्लौएजौं प्रणाली से

बने उस जग पर कछुए के खपड़ों की आकृति के खांचों पर हरा एनैमल जड़ा था। उस की विभाजक दीवारें मोड़ कर टांकी गई लोहे की पतली पट्टियों की थी। टंडन मेमसाहब ने सब से पहले वही जग टटोला। जग के मूठ वाले भाग की मीनाकारी व टंकाई बराबर न रह कर ऊबड़-खाबड़ थी। जग की मूठ चिपचिपा रही थी। चिपकाव ताज़ा था। कुशल हाथों से टंडन मेमसाहब ने उसे शीघ्र ही निष्प्रभाव कर दिया। मूठ उनके हाथ में लपक ली। उन्होंने झुक कर जग के उस फ़लक को पटका व पिछोरा जहां से मूठ पृथक हुई थी। वहां की सतह तेज़ रगड़ के कारण हिचर-मिचर गई थी। शायद उसी को निर्बाध बनाते समय कुंती के हाथ में एनेमल और लोहे के लव-लेश धसक कर बिखरे थे।

टंडन मेमसाहब की दहल उन्हें गोल कमरे के फूलदानों, लैम्पों, जगों, फालों, दीपाधारों व बुतों के पास विषय-क्रम से ले गई। सभी चीज़ों को टंडन मेमसाहब ने बड़े ध्यान से जांचा व परखा। जग के मूठ वाली गंधेली चिपचिपाहट का वितान सब ओर व्याप्त था: कहीं मंद व शिथिल तो कहीं तिक्त व उग्र। निस्संदेह कुंती का यह बृहदाकार हस्तक्षेप सांयोगिक आपात नहीं था। अपितु आयोजित आक्रमण था।

“कुछ दिनों के लिए मैं ममा के पास रहूंगी,” प्रकृतिस्थ होकर टंडन मेमसाहब ने पति का फ़ोन मिलाया, “हांगकांग से जीजी ने मां के यहां मेरी आर्ट गैलेरी के लिए कुछ चुनिंदा सामान भेजा है।”

“अभी कुछ दिन रुक जाओ,” टंडन साहब ने कहा, “तुम शहर में नहीं रहोगी तो लोग समझेंगे कुंती के स्वास्थ्य-लाभ में तुम्हारी रुचि खत्म हो गई है। कुंती के इलाज में व्यवधान आया तो वह बचेगी नहीं...”

“बेबी के साथ आज निकल लूंगी तो अच्छा रहेगा। संयोग से प्लेन की दो टिकटें भी डिस्काउंट पर उपलब्ध हैं। और फिर फ़ोन पर आपसे कुंती का हाल-चाल तो लेती ही रहूंगी। आप के वहां रहते कुंती के इलाज का उपेक्षित रहना असंभव है...”

“मगर इधर मेरी व्यस्तता बढ़ने वाली है। स्वास्थ्य मंत्रालय से हमारे अस्पताल का निरीक्षण करने राजधानी से कुछ लोग आ रहे हैं और मुझे तो दम लेने की फ़ुर्सत न मिलेगी...”

“मेरा जाना बहुत ज़रूरी है। और मैं जानती हूं, आप सब संभाल लेंगे। बहुत अच्छी तरह। पूरी तरह...”

टंडन मेमसाहब ने पति से कुंती के छल के विषय में कुछ न कहा। ताव खा कर जो वह कुंती के पिता पर गरजते-बरसते तो गोल कमरे की हज़ारों रुपयों की दुर्दशा-प्राप्त वह सज्जा-सामग्री फिर चाय के दाम भी चलाए न चलायी जा सकती।

पति से कुंती की मृत्यु की सूचना टंडन मेमसाहब को तीसरे दिन मिली,

“उस का शव उस के गांव ले जाया जाएगा। उस का दाह-संस्कार अपने लोग में वहीं करेंगे...”

“यह तो बहुत बुरा हुआ....”
“मैं ने तुम्हें पहले ही बता दिया था, तुम्हारा शहर में रहना ज़रूरी था...”
“आए एम सौरी। वेरी सौरी...”
“कब आओगी?” टंडन साहब पत्नी के खेद-निवेदन से प्रभावित हो कर अपना गुस्सा टाल गए। यों भी उसकी अनुपस्थिति में रसोई चौपट हुई जा रही थी।

“कल आ जाऊं, स्वीटहार्ट?” टंडन मेमसाहब ने एक चोंचलेबाज़ स्त्री की तरह इश्कबाज़ी प्रदर्शित की। बेबी के लिए एक घरेलू आया ढूंढ़ने की भी उन्हें जल्दी थी। स्त्रियोचित माया का उन्हें अच्छा अभ्यास था और स्थिति के अनुकूल उसे पारित करने में वह पारंगत रहीं।

कहानी

जंग जारी है

देवी नागरानी

पुरस्कृत लेखिका, अनुवादक (सिंधी, हिन्दी, और अंग्रेज़ी)
dnangrani@gmail.com

क़ैदी के लिए आज़ादी का हुक़्म जारी किया गया।

क़ैदख़ाने के उस पार की सलाखों के भीतर वह अपनी ही सोच के जंगल में घूम रहा था। पिछले नौ सालों से यहाँ रहते रहते वह उस कोठरी को अपना घर समझने लगा, वही स्थान जितना स्थायी था उतना ही अस्थिर। 'क़ैदी तुम्हारे लिए आदेश आ गया है।'

'कैसा आदेश?' क़ैदख़ाने की सलाखों के इस पार खड़े कोतवाल की ओर बिना देखे उसने जानना चाहा।
'तुम्हारी रिहाई का!'

"क्यों क्या मेरी सज़ा की मुद्दत पूरी हो गई है?' क़ैदी की फटी हुई आँखें अब कोतवाल के चेहरे का मुआयना लेते हुए उसके चेहरे पर गड़ गईं। 'नहीं अब देश आज़ाद हो गया है!' और वह लगभग चीखती हुई आवाज़ में दोहराने लगा... 'देश आज़ाद हो गया, आख़िर देश आज़ाद हो ही गया।' और सलाखों के भीतर खड़े-खड़े जोश में चक्कर लगाते हुए खुशी से ताली बजाकर नारे लगाता रहा।

आज़ादी तो उसे मिलनी ही थी, देश की आज़ादी के साथ। इसी लड़ाई के लिए तो वे लड़े थे, एक नहीं, दो नहीं, हज़ारों, लाखों, सैकड़ों देश प्रेमी।

यह उनकी ही कुरबानियों का नतीजा था, उन जांबाज़ सिपाहियों के अथक कोशिशों का परिणाम था जो आज यह ख़ुशख़बरी उसे मिली है, और तोहफ़े के रूप में मिली है उसे अपनी आज़ादी!

'तुम्हें अपनी चीज़ों की शिनाख़्त के लिए दो घंटे बाद ऑफ़िस में हाज़िर होना है और फिर तुम जहां चाहो जा सकते हो।'

वह अपने अतीत की संकरी गलियों से होता हुआ, मेन रोड की दाईं तरफ़ वाली कतार में बने घरों में, घर नंबर 11 की ओर टकटकी बांधे खड़ा हो गया। घर बड़ा नहीं, छोटा सा ही था। एक कमरा, छोटा सा चबूतरा खाना बनाने के लिए, गुसलखाना और छोटा सा खुला आँगन, जिसमें एक मोरी थी। वहीं बर्तन और कपड़े धुलते थे। घर की तरह परिवार भी छोटा सा ही था- पत्नी सरस्वती, तीन साल का बेटा राहुल। क्रांतिकारी प्रवृत्ति में सहजता के साथ-साथ सरस्वती पत्नी-धर्म की राह पर हमसफ़र बनकर अपना फर्ज़ बख़ूबी निभाती रही। देशद्रोहियों को देश निकाला और देश वासियों को उनकी आज़ादी मिले - यही तो लक्ष्य था कमलकांत सहाय के गिरोह का, जिसमें वे एकजुट होकर के अपनी सेवाएँ कार्यों में अर्पित करते थे। उसकी सहधर्मी होने के नाते सरस्वती कभी चार पाँच सदस्यों का खाना बना देती, कभी उनके कपड़े धोकर, सुखाकर उन्हें पहुँचाती, जब भी उनका पड़ाव उस इलाके में होता। जीवन का ध्येय सभी का एक ही था- देश को आज़ाद करवाना!

आज उसे रिहा किया जाएगा! आज़ाद देश का आज़ाद नागरिक जहां चाहे जा सकता है। पर वह कहाँ जा सकता है? नौ साल का अरसा लम्बा होता है, ज़िंदगी का एक भाग। जब और क्रांतिकारियों के साथ उसे गिरफ़्तार किया गया था तब वह घर पर ही था। दस्तक देकर, दोनों हाथ हथकड़ियों में जकड़कर जब कोतवाल उसे ले जाने लगे, तब तीन साल का राहुल दोनों हाथ फैलाकर

उसकी ओर अपने नन्हें पाँव बढ़ाने लगा। पर ज़ंजीरें कहाँ ढीली होती हैं, कहाँ फ़ासलों को तय कर पाती हैं? वह भी एक क़ैदी की? वह न अपने बच्चे को सहला सका, न चूम सका, न उसे अपने आगोश में ले पाया। सरस्वती की आंसुओं से तर आँखों में वह सिर्फ़ आशा निराशा के बीच में लटकी हुई तस्वीर बन गया, अपने ही कहे-अनकहे शब्दों का क़ैदी।

एक दिन पहले ही तो पत्नी ने पूछा था- "तो क्या जब हम आज़ाद होंगे, तब हमें कोई तकलीफ़, कोई परेशानी नहीं होगी? क्या हमारे नए नेता हमारे माई-बाप बनकर हमारी जरूरतें पूरी करेंगे? हमें कपड़ा, अनाज और बच्चों को शिक्षा की सुविधा दे पाएंगे?"
"हाँ, हाँ.... तब वह सब कुछ मिलेगा जिसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकती। सभी बेरोज़गारों को काम, ग़रीबों को उनकी परिस्थिति अनुसार सुविधाएं और जरूरतमंदों को आवश्यकता अनुसार मुफ़्त दवा-दारू, मुफ़्त तालीम, और मुफ़्त में उनके झगड़े-फ़सादों को भी निपटाया जाएगा। आज़ाद देश का हर आज़ाद आदमी ख़ुशहाल होगा।"
"मुझे विश्वास नहीं हो रहा है ऐसा कुछ होगा। एक सपना सा लग रहा है।" पत्नी के कहे शब्द उसे याद हो आए...

"सपनों को हक़ीक़त में बदलने के प्रयास में ही तो हम आगे बढ़ रहे हैं। अब क़दम पीछे नहीं हटेंगे जब तक मुक़ाम नहीं मिलेगा।" कमलकांत ने जोश भरे शब्दों में कहा था।

और उसी समय दस्तक हुई, हथेलियाँ हथकड़ियों में जकड़ी गईं और जैसे कोई बेरहम शिकारी अपने शिकार को ले जाता है, कुछ ऐसी ही स्थिति में कमलकांत को ले जाया गया। सरस्वती सपने और हक़ीक़त के फ़ासले का गणित जोड़ रही थी। उम्मीदों की नाज़ुक टहनियाँ तूफ़ानी हवाओं से क्षतिग्रस्त होती हुई दिखाई दीं। कुछ कहने, करने की दूजी राह न सूझी, तो वह कोतवाल के सामने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए कहने लगी - "मुझे भी इनके साथ क़ैदी बनाकर ले चलो, मैं वहीं अपना जीवन बिता लूंगी। यहाँ अकेली रह गई तो जी नहीं पाऊँगी।"

"तुम्हें इसके बारे में सोचने की ज़रूरत नहीं। तुम्हें अकेले कैसे कोई रहने देगा? आस-पास में ही हमारी कोतवाली है। इतने सारे कोतवाल है, एक न एक तुम्हारी मदद को आएगा, इस बात का वादा रहा। यह देशद्रोही है, इसे तो सलाखों के पीछे रहना होगा... तुम... तुम...."

"थू...थू...थू करती हूँ तुम्हारे मुंह पर, लानत है तुम्हारी सोच पर जो देश के रखवाले होकर भक्षकों जैसी बातें कर रहे हो। मेरा सतीत्व मेरी ताक़त है, मेरा पति मेरा मालिक... और तुम सरकार के पालतू कुत्ते...!" सरस्वती की आँखों से अविरल आँसू बहे जा रहे थे। वह जाते हुए कमलकांत को निहारती रही जब तक वह उसकी नज़रों से विलीन न हुआ। उसकी आँखों में जैसे खून उतर आया था। जो सपना आँखों ने सजाया वह टूट गया, सभी कल्पनाएँ हक़ीक़तों से टकराकर चूर चूर हो गईं- यह कैसा देश है जहां भारत के मक्कार लोग अंग्रेज़ों के तलवे चाटते फिरते हैं, अपनी धरती को तिरस्कृत करते हैं, धरती की मर्यादा के भक्षक बनकर उसके आँचल को दाग़दार करने पर तुले रहते हैं?

ऐसे कई सवाल उसकी सोच के खाली दामन को भरते गए। वह सन्नाटों को चीरने की कोशिश में बड़बड़ाती रही जैसे किसी सदमे के तहत इज़हार हुआ जा रहा हो! आज़ाद हिन्दोस्तान... न कोई अमीर, न ग़रीब। हर एक की ज़रूरत पूरी होगी, मुफ़्त दवा-दारू, मुफ़्त तालीम, और मुफ़्त में इन्साफ...!

बस वक़्त ने करवट बदली, जो कुछ उसके पास था, सब कुछ लुट गया। उसे लगा जैसे वह एक नहीं अनेक ज़ंजीरों से जकड़ी गई थी। मुफ़लिसी की ज़ंजीर, भूख की जंज़ीर, हवस की ज़ंजीर, साँसों की ज़ंजीर! ज़ंजीरों की क़बा में वह घुटन भरे माहौल में जीने के लिए मजबूर हुई थी।

अपने दोनों खाली हाथों की मुट्ठियों को भींच कर उसने देखा, दोनों हाथों में दुल्हन की चूड़ियों की बजाय लोहे से भी कड़ी अनदेखी ज़ंजीरें थीं। उसने अपने नीचे के होंठ को दांतों के बीच इतना ज़ोर से दबाया कि होंठ लाली से रंग गए।

और वक़्त, काल चक्र के दायरे में घूमता रहा... दो साल भी नहीं गुज़रे कि वह सरस्वती न रहकर, एक

बदनाम, बदचलन, पागल आवारा औरत के नाम से जानी जाने लगी। बच्चा पुलिस ने हिरासत में ले लिया गया। पागल औरत परवरिश के काबिल नहीं होती, यही सबब बन गया।

कमलकांत को अपना नाम तक याद न रहा, बस क़ैदी नम्बर 9 उसकी पहचान बन गई। जेल की कोठरी नंबर 9 उसका आवास बन गई। वहीं उसे सुकून मिलता और उसी गुमसुम माहौल में वह पड़ा पड़ा सोचता था कि सरस्वती पर क्या गुज़री होगी? कैसे अकेली जान उन भूखे भेड़ियों और दलालों की दुनिया में जीती होगी? होगी भी या नहीं? न उसे बाहर की दुनिया की कोई ख़बर देता, न वह अपनी ओर से कोई ख़बर घर भेज पाता। हर हाल से बेख़बर वह जी रहा था।

और आज नौ साल बाद उसे आज़ादी बख़्शी गई है, हाथ पैर खुले कर दिये गए हैं, कोई ज़ंजीर जकड़ने के लिए अब नहीं रही। फ़क़त सोच की अनगिनत ज़ंजीरें उसे याद के खंडहरों की ओर धकेल कर ले जा रही थीं... उसके घर के तरफ़, अपने परिवार की तरफ़!

घर तो घरवालों से होता है, अब तो राहुल बारह साल का हो गया होगा और सरस्वती...? सरस्वती की याद आते ही उसकी सांसें महकने लगती। वह आँखें मूंदकर जैसे उस महक को अपने भीतर भर लेता। दौड़ते हुए बच्चे के नन्हें पाँवों की पदचाप उसके ज़ेहन में बची हुई याद की परछाइयों को और ज़्यादा सायेदार बनाने लगीं। अतीत उसके आज से जुड़ने लगा। “मुझे विश्वास नहीं हो रहा है ऐसा कुछ होगा। एक सपना सा लग रहा है।” पत्नी के कहे शब्द उसे याद हो आए...।

“हाँ, हाँ वह सब कुछ मिलेगा जिसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकती। सभी बेरोज़गारों को काम, ग़रीबों को उनकी परिस्थिति अनुसार सुविधाएं और जरूरतमंदों को आवश्यकता अनुसार मुफ़्त दवा-दारू, मुफ़्त तालीम, और मुफ़्त में उनके झगड़े-फ़सादों को भी निपटाया जाएगा। आज़ाद देश का हर आज़ाद आदमी ख़ुशहाल होगा।” यही तो उसने भी उसे सांत्वना देते हुए कहा था।

इसी खयाल में डूबा, जेल की चारदीवारी से बाहर आते ही जो रास्ता सामने मिला, वह उसी पर क़दम बढ़ाता रहा। सब कुछ बेगाना सा, अनजाना सा लगा। न दिशा का ध्यान रहा, न अपनी दशा का! बस कड़ी धूप के साए में बे-मक़सद ही चलता रहा। अचानक ठोकर खाकर गिरने को था कि एक राहगीर ने उसे थामा और सहारा देते हुए पास ही एक दरख़्त की छाँव तले बिताया।

“भैया लगता है लम्बा सफ़र करते आए हो, थके हुए हो, पानी पीकर थोड़ा आराम कर लो, फिर आगे बढ़ना।” और वह अपनी राह चल दिया। दरख़्त की छाँव तले कब कमलकांत की आँख लग गई पता नहीं, पर अचानक एक चीख़ती हुई आवाज़ ने उसे जागा दिया।

"लड़ाई हो रही है, आज़ादी के लिए लड़ाई लड़ी जा रही है। बारूदी बम बरस रहे हैं, घर जलकर रख हो रहे हैं, फ़सलें तबाह हो रही हैं। लोगों में तहलका मचा हुआ है, लाशें बिछ रही हैं, भूख प्यास से आदमी मर रहे हैं। उठो... जागो... कोई तो उन्हें बचाओ... उन्हें जीने का हक़ दिलाओ। उनकी ज़रूरतें पूरी करो! मुफ़्त दावा-दारू, मुफ़्त तालीम, मुफ़्त इन्साफ दिलाकर बुराइयों से निजात दिलाओ... उठो... जागो...!" और चौंक कर उठ बैठा कमलकांत। नींद आँखों से रफ़ूचक्कर हो गई। एक राहगीर का दामन थामकर उसने सभ्यता से पूछा- "भाई यह औरत कौन है?"

"अरे क्या बताएं भाई, एक पागल औरत है। कहते हैं इसके आदमी को क्रांतिकारी मानकर कोतवाली वाले बेड़ियाँ पहना कर ले गए! बस, तब से पागलपन के दौरों ने उसे इस हाल में पहुंचाया है, जहां वह न कुछ समझती है, न जानती है, न किसी को पहचानती है। अगर भूले से कोई उसकी मदद को पहुंचे तो वह उसे काट खाने को दौड़ती है, उसे अपने लम्बे नाखूनों से लहूलुहान कर देती है।"

वह औरत अपने नारे समाप्त करके शायद थकान मिटाने के लिए ही उसी पेड़ तले ठहर गई। फिर जाने उसे क्या सूझा कमलकांत को, उठकर उसके पास आया और नर्म लहज़े में कहा "अब जंग ख़त्म हो गई है!" कहते उसकी आँखों से अविरल आंसुओं की धारा बहने लगी और आँखों के कोने सिकुड़ने लगे।

औरत ने सर ऊपर उठाया और एक लम्बी चिंता मुक्त सांस ली, शायद राहत महसूस की- जैसे सचमुच ही जंग ख़त्म हो गई थी...।

"अब ज़ंजीरों से मुक्ति मिलेगी, मुफ़लिसी की ज़ंजीर, भूख की ज़ंजीर, हवस की ज़ंजीर, साँसों की ज़ंजीर, मतलब हर घुटन भरी ज़ंजीर से रिहाई!" वह बड़बड़ाई।

उसने कमलकांत की ओर देखते हुए कहा, "क्या आज़ाद देश में भी ये ज़ंजीरें बाक़ी रहेंगी?" जैसे उसे कुछ याद हो आया... उसके दोनों हाथों की चूड़ियाँ तोड़ दी गई थीं, उसकी मांग से सिंदूर पोंछा गया था... उसे विधवा करार किया गया... और उसके बाद यही ज़ंजीरें उसे जकड़ती रहीं... मुफ़लिसी की ज़ंजीरें, भूख की ज़ंजीरें, साँसों की ज़ंजीरें...!

और वह बदनाम, बदचलन, आवारा औरत बन गई। उसने अपने दोनों सूने खाली हाथों को मुट्ठियों में भींचकर कमलकांत के सामने फैलाया...! कमलकांत ने न जाने क्या सोचकर, उस औरत के सर पर अपने दोनों हाथ रख दिये, अपनी आंसुओं की धार से उसकी मांग के हर दाग़ को धो दिया। धीरे से सहारा देकर उसे उठाया, भुजाओं का सहारा देते हुए उसे अपने साथ खड़ा किया... फिर उसकी आँखों में यूं देखा जैसे वह उसकी आँखों से गले मिल रहा हो।
देश की आज़ादी की खुशी में
एक आलिंगन।

फिर जाने क्या हुआ, जैसे मौसम बदला। पागल औरत अपने ही इर्द-गिर्द घूमते हुए खुशी से तालियाँ बजाने लगी- जैसे हवाएँ झूम उठी हों, फूल खिलखिलाने लगे, तितलियाँ उड़ान भरने लगीं हों।

और वह फिज़ाओं के साथ सुर ताल मिलाते हुए बोल उठी- "अब जंग ख़त्म हो गई है, देश आज़ाद हो गया है। अब कोई ज़ंजीर बाक़ी नहीं! आज़ाद देश में सभी बेरोज़गारों को काम, ग़रीबों को सुविधाएं, मुफ़्त दवा-दारू, मुफ़्त तालीम, और मुफ़्त न्याय मिलेगा। आज़ाद देश का हर आज़ाद आदमी ख़ुशहाल होगा।'

मुक्त हवाओं में दो साथी, आज़ादी के सलीब को ढोकर, क़दम-दर-क़दम अनजानी दिशा की ओर निरंतर बढ़ते रहे आगे... और आगे...!

विज्ञान व्रत

लेखक तथा चित्रकार (जन्म-तिथि: 17 अगस्त 1943, मेरठ), एम.ए. (ललित कला), बी.एड., डिप्लोमा (चित्रकला)

vigyanvrat@gmail.com

विज्ञान व्रत, सांस्कृतिक मंत्रालय भारत सरकार द्वारा सीनियर फेलोशिप (चित्रकला), प्रकाशित कृतियाँ- ग़ज़ल संग्रह: बाहर धूप खड़ी है, चुप की आवाज़, जैसे कोई लौटेगा, तब तक हूँ, मैं जहाँ हूँ, शर्मिन्दा पैमाने थे, किसका चेहरा पहना है, भूल बैठा हूँ जिसे, मेरा चेहरा वापस दो, याद आना चाहता हूँ, लेकिन ग़ायब रोशनदान, मेरे वापस आने तक, रोशनी है आपसे, विज्ञान व्रत: चुने हुए शे'र, शब्दों का चितेरा, सोचना मुझको पड़ा, आपसे रिश्ता रहा, सामने है आईना, यादों के तहख़ानों में, और सुनाओ कैसे हो तुम तथा प्रतिनिधि ग़ज़लें।

दोहा संग्रह: खिड़की भर आकाश
नवगीत संग्रह: नेपथ्यों में कोलाहल
बालगीत संग्रह: अक्कड़-बक्कड़ इल्ल -गिल्ली
सम्मान व पुरस्कार: अन्तरराष्ट्रीय वातायन सम्मान (लन्दन), "सुरुचि सम्मान" गुरुग्राम, "परम्परा सम्मान" बिजनौर, "समन्वय सारस्वत - सम्मान" सहारनपुर, "हिन्दी गौरव सम्मान" नीदरलैंड, "आधारशिला कला भूषण सम्मान" मॉरीशस, "साहित्य सम्मान" सिंगापुर, "मनु 'स्मृति सम्मान" दिल्ली, "कँवल सरहदी सम्मान" मेरठ, "साहित्य मण्डल सम्मान" श्रीनाथद्वारा, "ताज-ए-हिन्दुस्तान सम्मान" पंचकुला, देश / विदेश की मुख्य कलादीर्घाओं में मेरे चित्रों की 39 एकल प्रदर्शनियाँ।

I A F A कला अकादमी अमृतसर द्वारा पुरस्कृत। राज्य ललित कला अकादमी लखनऊ उ.प्र. द्वारा पुरस्कृत। ललित कला अकादमी दिल्ली द्वारा आयोजित माउण्ट आबू, गुवाहाटी, त्रिपुरा, N Z C C चंडीगढ़ तथा राष्ट्रीय/अन्तरराष्ट्रीय/राज्य स्तर पर प्रतिष्ठित संस्थाओं द्वारा आयोजित लगभग 30 चित्रकला - शिविरों में भागीदारी।

विश्व हिन्दी सम्मेलन (दक्षिण अफ़्रीका), इंग्लैंड और आयरलैंड के प्रमुख शहरों, मॉरीशस और सिंगापुर में आयोजित अन्तरराष्ट्रीय कविसम्मेलनों में काव्य पाठ।

इंग्लैंड के NRI कवियों की हिन्दी, उर्दू और पंजाबी 27 कविताओं ("कलर्स ऑफ़ पोयट्री" में प्रकाशित) का अँग्रेज़ी में भावानुवाद। सुश्री जया वर्मा (नौटिंघम) के कहानी संकलन "सात क़दम" की सात कहानियों ("सेवन स्टेप्स") में प्रकाशित का अंग्रेज़ी में अनुवाद, A Walk In The Corridors Of Eternity" (Journey / Biography of Dr. Sandeep Marwah) का हिन्दी अनुवाद।

विदेश यात्राएँ: 15 देशों की साहित्यिक/सांस्कृतिक यात्राएँ।
चित्रों का संग्रह: राष्ट्रपति भवन नई दिल्ली, देश की प्रमुख अकादमियों, प्रसिद्ध व्यापारिक संस्थानों तथा देश/ विदेश के शताधिक व्यक्तिगत संग्रहों में मेरे चित्र संग्रहीत।

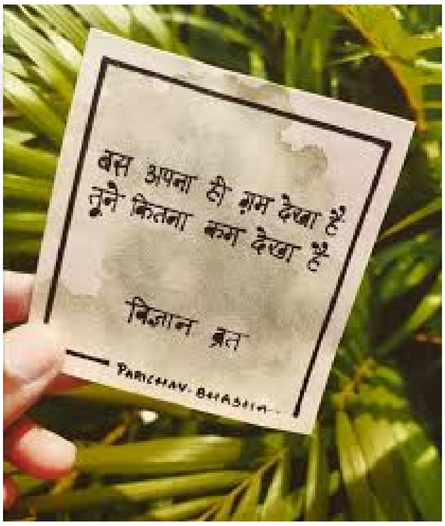

ग़ज़ल

1

कुछ दिन बेपहचान रहूँ
अपना चेहरा किसको दूँ

और उन्हें अब क्या लिक्खूँ
ख़त में ख़ुद को ही रख दूँ

ख़ुद को कुछ ऐसे छेड़ूँ
जैसे कोई नग़मा हूँ

इक अंकुर- सा रोज़ उगूँ
और फ़सल-सा रोज़ कटूँ

अब उनकी तस्वीर बनूँ
ख़ुद को फिर तहरीर करूँ

पहले ख़ुद से तो निबटूँ
फिर इस दुनिया को देखूँ

शाम को जितना घर लौटूँ
ये समझो बस उतना हूँ

2

मुझको अपने पास बुलाकर
तू भी अपने साथ रहा कर

अपनी ही तस्वीर बना कर
देख न पाया आँख उठा कर

बे - उन्वान रहेंगी वर्ना
तहरीरों पर नाम लिखा कर

सिर्फ़ ढलूँगा औज़ारों में
मुझको देखो तो पिघला कर

सूरज बनकर देख लिया ना
अब सूरज-सा रोज़ जला कर

3

मैं कुछ बेहतर ढूँढ़ रहा हूँ
घर में हूँ घर ढूँढ़ रहा हूँ

घर की दीवारों के नीचे
नींव का पत्थर ढूँढ़ रहा हूँ

जाने किसकी गर्दन पर है
मैं अपना सर ढूँढ़ रहा हूँ

हाथों में पैराहन थामे
अपना पैकर ढूँढ़ रहा हूँ

मेरे क़द के साथ बढ़े जो
ऐसी चादर ढूँढ़ रहा हूँ

4

मुझ पर कर दो जादू- टोना
एक नज़र ऐसे देखो ना!

इतने दिन में घर आये हो
घर जैसे कुछ देर रहो ना!

बादल हो तुम या ख़ुशबू हो
बरसो खुलकर या बिखरो ना!

ढूँढ़ न पाया ख़ुद को घर में
छान फिरा हूँ कोना- कोना

तुमसे ख़ुद को वापस क्या लूँ
रक्खो अब तुम ही रख लो ना!

5

वो तब तक दरिया न हुआ
मैं जब तक सहरा न हुआ

वो जब तक मेरा न हुआ
मैं ख़ुद भी अपना न हुआ

ख़ुद से भी मिलना न हुआ
लेकिन मैं तनहा न हुआ

दुनिया मैं क्या-क्या न हुआ
मैं उसकी दुनिया न हुआ

मैं अब तक ख़ुद-सा न हुआ
यह होना होना न हुआ

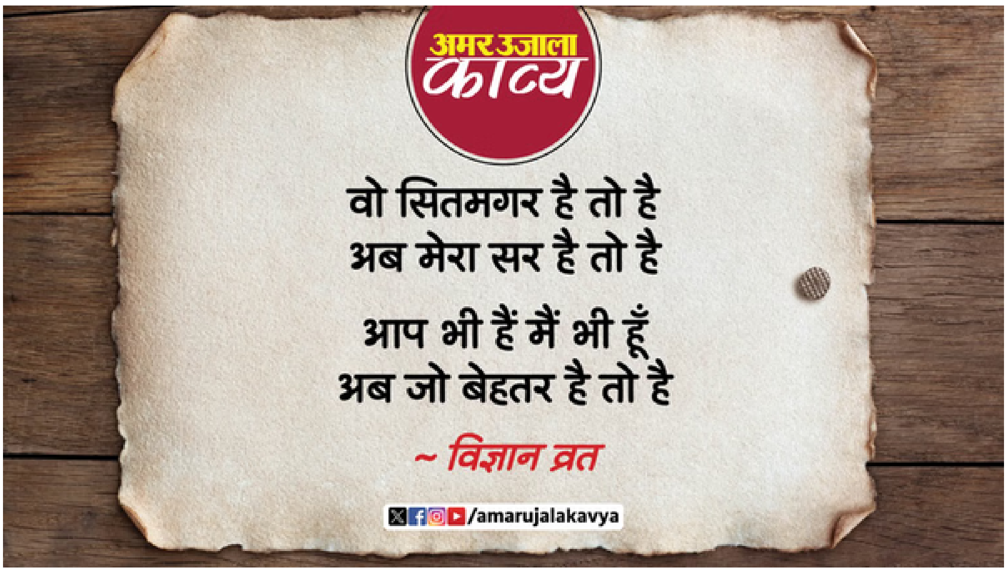

कविता

तुम हो तो, दुनिया में बहुत कम लोग हैं, उतर रहा हूँ, पुनरारंभ

शहंशाह आलम

बिहार विधान परिषद के प्रकाशन विभाग में कार्यरत, 'वाचन' के संपादक, पुरस्कृत लेखक, प्रस्तोता।
shahanshahalam01@gmail.com

तुम हो तो

तुम हो तो रंग हैं
फैले हुए ख़ूब सारे
मंत्रमुग्ध करने वाले

तुम हो तो बारिश की रिमझिम है
रास्तों को, घरों को नवल-धवल करती हुई
पुरातन की क्रूरता को दूर ले जाती हुई

तुम हो तो पर्व है, महापर्व है
तुम्हारी ही आभा से उपकृत

तुम हो तो मैं भी हूँ
जनांदोलनों के बीच
धान के बीज बोने वालों के बीच
मिट्टी के खिलौने बनाने वालों के बीच
धौंकनी चलाने वालों के बीच
ठेला खींचने वालों के बीच
प्यार की चिट्ठियां बाँचने वालों के बीच

तुम हो तो गीत हैं
जीत के गाए जा रहे
इस बारिश वाले महीने में।

दुनिया में बहुत कम लोग हैं

दुनिया में बहुत कम लोग हैं
जो फूलों से प्यार करते हैं

दुनिया में बहुत कम लोग हैं
जो घास वाले रास्ते पर चलते हैं

दुनिया में बहुत कम लोग हैं
जो लोक का गीत गाते हैं

दुनिया में बहुत कम लोग हैं
जो हत्यारे से डरते नहीं
बल्कि हत्यारे को डराते हैं

दुनिया में बहुत कम लोग हैं
जो मृत्यु में भी जीवन को पाते हैं।

उतर रहा हूँ

उतर रहा हूँ
उतर रहा हूँ
धार के विपरीत

उतर रहा हूँ
नदी की गहराई में
नदी के गहरे होने की
अवस्था को थाहने

उतर रहा हूँ
नदी के क़िस्से को
जीवन का हिस्सा बनाने

उस तरह से उतर रहा हूँ नदी में
जिस तरह से नाविक उतारता है
अपनी नाव को नदी में बेहिचक।

पुनरारंभ

अचानक ख़्याल आया
फिर से शुरू करूँ इस जीवन को
लगा जीवन तो अनवरत है
मैं ही रुक-ठहर गया हूँ आगे बढ़ने से

फिर ख़्याल आया
कि चलो हँसता हूँ
नदी के किनारे जाकर
महसूस हुआ नदी तो
खिलखिला कर हँसती चली आ रही है
जहाँ से वह चली थी अंतहीन यात्रा पर

साँझ की छतों को देखा
वहां लड़कियों की आवाजाही जारी थी

चौक पर जाकर खड़ा हुआ
तो पाया चहल-पहल पहले जैसी ही थी

पेड़ पर चढ़ कर शहद के छत्ते को देखा
छत्ता शहद से लबालब भरा था अब भी

अंतत: यही-यही लगा
पुनरारंभ की ज़रूरत मुझे थी
सिर्फ़ मुझे अनगिन बार
मैं जो ठिठक कर ठहर गया था
हत्यारे को अचानक अपने सामने पाकर।

कविता

यह 'करु काल', मुखौटे, प्रवास

डॉ. मीनकेतन प्रधान

विश्व हिन्दी अधिष्ठान- रायगढ़ के संस्थापक, लेखक और आलोचक
mkp1558rgh@gmail.com

यह 'करु काल'

छाया काल से आगे
यह 'करु काल'
घनी हो रही मायूसी
बहुत-कुछ करने का
मन होना
कुछ नहीं कर पाना
लोगों का कतराना
एक-दूसरे से
अलग-थलग रहना
डर अब
साँसों का नहीं
साँस लेने का है।
चिल्ल-पों
धूम-धड़ाके
उठा-पटक का बाज़ार
भाषणों की बौछार
लूट-खसोट का चमत्कार
उधर हाहाकार
इधर तकरार
घर भीतर-बाहर
सब बराबर,
वक़्त लिख रहा
कथा-कहानियाँ
हवा सुना रही
कानों में
भागती ज़िन्दगी की।
इस सरपट दौड़ में
अफ़सोस की बात है
यहाँ आदमियत छोड़
मुकम्मल हर बात है,
दुनिया ऐसी।

वह आ रहा सचेत
इधर छँटेंगे एक-एक
रेंग रहा 'करु काल'
चलेंगे सब कुछ देख-देख,
दुनिया ऐसी।

मुखौटे

गधों की जमात में
वज़न तौलने का,
कुत्तों की जमात में
राग-सुर का,
भेड़ियों की जमात में
इंसानियत का
कोई मतलब नहीं होता।
एक कारखाने में बने
इनके मुखौटों में
फ़र्क़ सिर्फ इतना होता
कोई छोटा
कोई बड़ा होता,
मगर कारगुज़ारियों में
किसी से कोई
कम नहीं होता।

प्रवास

काम इतना
नींद की ज़रूरत न हो तो
कम पड़ती रातें
अक्सर दिन का
हिस्सा बन जातीं,
मगर
कोई हिस्सा नहीं होता दिमाग़ का
चले चलता एकतरफ़ा
प्रवास में
लोग हमारे
अलग-अलग देश होते
अकेले में
उनकी आत्मा बोलती
दुकेले में मन
और आँखों में पलते
सपने दूर के।

लघुकथा

भात

डॉ. ऋचा शर्मा

प्रोफ़ेसर और अध्यक्ष, हिंदी विभाग, अहमदनगर कॉलेज

richasharma168@gmail.com

लघुकथा

लालसा

संध्या प्रकाश

भात

अलस्सुबह चाय की चुस्कियों के साथ रेवा की शादी की बातें चल रही थीं। सासु जी बोलीं, “अरे बहू! यह बताओ रेवा की शादी में भात कौन देगा? तुम्हारे भाई तो है नहीं, दो बहनें ही हो।”

“अम्माँ! शादी में भात की रस्म भाई ही करता है क्या?” साधिका ने बड़े ही शांत भाव से पूछा।

“हाँ बहू! लड़की की माँ मिठाई, कपड़े, फल लेकर मायके अपने भाई को भात न्योतने जाती है। शादी में लड़की का मामा अपनी सामर्थ्य के अनुसार भात लेकर आता है, जिसमें बहन के परिवार के लिए कपड़े और लड़की के लिए साड़ी, गहने आदि होते हैं।”

“अम्माँ! तो मैं कल ही जाकर राधिका को भात न्योतकर आती हूँ। मेरी बेटी की शादी में उसकी मौसी भात लेकर आएगी।”

“बहू! अपने किसी ताऊ-चाचा के लड़के को कह दे भात देने को, मौसी को तो शादी में भात देते मैंने कभी नहीं देखा।”

“अब देख लेना अम्माँ!” साधिका हँसते हुए बोली।

लालसा

ट्रेन अपनी पूरी रफ्तार से चल रही थी। मेरे सामने की बर्थ पर मोहनलाल, उनकी पत्नी चंपा और चार साल का बच्चा मोनू बैठे थे। मेरे पूछने पर सामने बैठे दंपति ने अपना यही परिचय दिया था। वे आपस में कभी बातचीत करते, कभी बच्चे के साथ छोटे-मोटे खेल खेलते, कुछ नहीं तो बिना बात के बच्चे को गुदगुदी करते और बच्चा ठठाकर हँस पड़ता।

मेरे बगल की बर्थ पर भी एक युगल दंपत्ति अपने बच्चे के साथ बैठा था, बच्चा मोनू का ही हमउम्र लग रहा था। मैं उन लोगों का नाम नहीं बता पाऊंगी क्योंकि मेरे पूछने पर भी उन्होंने मेरी बात का कोई उत्तर नहीं दिया था। वे अपने-अपने मोबाइल में व्यस्त थे। बच्चा कुछ देर तो अपने मोबाइल पर कुछ खेलता रहा पर जल्द ही उसका मन मोबाइल से उचट गया, वह बहुत ध्यान से सामने बैठे दंपत्ति और बच्चे की चुहलबाजी देखने लगा।

वह भी अपने पिता के साथ खेलना चाह रहा था। उसने अपने पिता के हाथ को खींचते हुए कुछ कहना चाहा

परन्तु उसके पिता ने बिना उसकी ओर देखे ही उसके हाथ को झटकते हुए कहा.. "डोन्ट डिस्टर्ब.. लेट मी डू माय वर्क"। अब बच्चे ने अपनी मां की गोद में चढ़ने की कोशिश की।

"सिट प्रॉपर्ली एंड प्ले विद योर मोबाइल" मां ने अपने पर्स से एक महँगी चाकलेट निकाल कर बच्चे को देते हुए कहा। "मुझे आपके साथ खेलना है जैसे वे लोग खेल रहे हैं" बच्चा मचलते हुए बोला।

मां ने एक हेय दृष्टि उस दंपत्ति पर डाली और बच्चे को समझाते हुए बोली.. "वे लोग गरीब हैं, उनके पास एक मोबाइल भी नहीं है जिससे वे खेल पाएँ।"

"माम मुझे भी गरीब बनना है फिर मैं, डैडी और तुम सब मिलकर खेलेंगे," बच्चा मासूमियत से बोला।

निबंध

ऑर्गेज़्म के जंगल मे भटकता प्रेम

प्रो. मधु चतुर्वेदी

श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय के सांस्कृतिक प्रकोष्ठ की अध्यक्ष हैं, साहित्यकार और विदूषी
madhuchaturvediauthor@gmail.com

भारतीय चिन्तन धारा में प्रेम की पारम्परिक परिकल्पना का बिम्ब अत्यन्त दिव्य है। दिव्य यानि अलौकिक। जो अलौकिक है, वह दुरुह है, असाध्य है। सामान्य जन की सामर्थ्य से परे। प्रेम की सामर्थ्य शारीरिक बल से नहीं, बल्कि आत्मबल से आती है।

प्रेम शिवशंकर का वह धनुष है जो अत्यन्त बलशाली नरेशों से उठाये न उठा और कोमलांगी सीता जिसे नित्य ही स्थानान्तरित कर देती थीं। प्रेम प्रतिदान नहीं माँगता, प्रेम अधिकार नहीं चाहता; प्रेम किसी को बाँधता नहीं, न स्वयं बंधता है - यह उन्मुक्तता ही प्रेम का सार तत्व है। हमारी संस्कृति इसी प्रेम को पूजती है। तभी तो राधा वैवाहिक सम्बन्धों में बंधी रुक्मिणी से ऊपर उठकर जनमानस में कृष्ण से भी पूर्व स्थापित हो गयी।

प्रेम की सत्ता दैहिक नहीं, आत्मिक है। विशुद्ध प्रेम में कामना निःशेष हो जाती है, भोगेच्छा विलुप्त हो जाती है। रह जाता है तो मात्र एकात्म, अद्वैत। प्रेम करना यानी विदेह होना।

इस एकात्म की, अद्वैत की, विदेह होने की पराकाष्ठा हमें मीरा में दिखाई देती है। इसीलिए कृष्ण का कोई लौकिक, दैहिक आधार न होते हुए भी मीरा उसके प्रेम में दीवानी होकर अमर हो गयी।

यह परिपक्व एकात्म ही प्रेम की परिपूर्णता है, किंतु यह 'लोक' है। यहाँ अलौकिकता न तो सर्वसुलभ है, और न ही सर्वग्राह्य। यहां पर अलौकिकता मात्र आदर्शों में मान्य है, आचरण में नहीं। सामान्य लौकिक व्यवहार में सम्बन्धों की मान्यता है। प्रेम की अवधारणा सूक्ष्म किंतु विस्तृत है, सम्बन्धों का आधार स्थूल किंतु संकुचित है। अतः सम्बन्ध हेतु दैहिक आलम्ब आवश्यक है। जबकि प्रेम मात्र भावपोषित है।

सामान्यतः दो विपरीतलिंगी व्यक्तियों के लगाव का मूल कारण दैहिक आकर्षण ही होता है और यह दैहिक आकर्षण भावुक न होकर कामुक होता है। यदि हम शब्द की व्युत्पत्ति पर जाएं तो 'कामुक' और 'कामना' दोनों शब्द 'काम' से बने हैं। 'काम' एक अत्यंत व्यापक शब्द है। इसका अर्थ विस्तार उभयपक्षीय है। लौकिक अर्थ में यह लुब्धता का आभास देता है, जबकि अलौकिक अर्थ में यह समस्त सृष्टि का आधार बन, कल्याणकारी सिद्ध होता है। काम से प्रसूत कामना यानि कुछ पाने की इच्छा, भोगने की लालसा। कामना प्रेम का आधार नहीं होती। उपर्युक्त सारी विवेचना के सन्दर्भ में यहाँ मेरा एक दोहा उद्धृत करना समीचीन होगा:

प्रेम नहीं है कामना, प्रेम नहीं है भोग।
प्रेम नाम अद्वैत का, इसमें कहाँ वियोग।।

तो विशुद्ध 'काम' कामना तक आते आते लुब्ध पिपासु होकर कामुक हो गया और निष्काम प्रेम कामना का उपकरण मात्र बन गया। किन्तु यहां एक जटिल विरोधाभास भी है। कामना से प्रेम नहीं उपजता, किन्तु प्रेम से कामना उपज सकती है। तो ये कामना ही प्रकारान्तर से 'ऑर्गेज़्म' है।

जब काम कामना में परिणत होकर कामुक हो जाता है तब 'ऑर्गेज़्म'

प्रकट होता है। 'ऑर्गेज़्म' क्या है, दैहिक सुख। उभय पक्ष का अंग विशेष से खेलने का चाव, उस चाव से उत्पन्न क्रीड़ाओं का सुख, जिसे शास्त्रीय भाषा में 'कामकेलि' कहा जाता है। वैसे यह कामकेलि कोई नितान्त वर्जित व निषिद्ध विषय नहीं है अन्यथा ऋषि वात्स्यायन ने कामसूत्र जैसे विशद ग्रन्थ की रचना क्यों की होती। यही तो सृष्टि का आधार है। हमारे शास्त्रों में कामकेलि मात्र सन्तान की उत्पत्ति के लिए मान्य है। अन्यथा मात्र दैहिक सुख हेतु यह गर्हित और निषिद्ध मानी गई है।

कालान्तर में इसे मात्र सन्तान उत्पत्ति के लक्ष्य तक सीमित न रखकर कुछ विस्तार दिया गया और काम के अतिरेक को संयमित और अनुशासित करने हेतु विवाह नामक संस्था की अवधारणा स्थापित की गयी। किन्तु उस शास्त्रीय युग से आधुनिक युग तक आते आते लगभग सभी प्राचीन मान्यताएं या तो विलुप्त हो गयीं या विकृत हो गयीं।

प्राचीनकाल का वह संयमित और अनुशासन आधारित आचरण आज घोर असंयमित हो, उच्छृंखल हो उठा है। यहां तक कि अब विवाह नामक संस्था भी अनुपयोगी व अप्रासंगिक हो गयी है, क्योंकि विवाह की अपनी मर्यादा है, कुछ नैतिक उत्तरदायित्व हैं, जो आज की पीढ़ी निभाना नहीं चाहती। अतः अपनी उद्दंड व उच्छृंखल कामना के वशीभूत हो विवाह की मान्यता को ही रद्द कर दिया। और अपने आदिम 'ऑर्गेज़्म' की संतुष्टि हेतु एक नई संस्था 'लिव-इन' का अविष्कार कर लिया। और इस संस्था के दो घटक 'गर्लफ्रेंड' व 'बॉयफ्रेंड' भी परस्पर ईमानदार नहीं होते। वे एक का बंधन नहीं, बल्कि अनेक से रमण चाहते हैं। इसी उपभोगवाद के चलते जो विवाह हो भी रहे हैं, वे प्रायः या तो शीघ्र ही टूट रहे हैं या घिसट-घिसटकर सम्बन्धों को ढोया जा रहा है।

इसी भोग की प्रवृत्ति ने प्रेम को परमार्थ के उदात्त आकाश से उतारकर 'ऑर्गेज़्म' के नितान्त स्थूल व संकुचित धरातल पर खड़ा कर दिया है। किन्तु हमें इसकी निन्दा करने का कोई अधिकार नहीं है। क्योंकि परिवर्तन तो प्रकृति का मूल स्वभाव है।

युग बदलते हैं, उनके साथ-साथ मान्यताएं, परम्पराएं व धारणाएं भी बदलती हैं और उनके अनुसार आचरण भी। 'जो बदल नहीं पाता वह ज़रूर मिटता है' के सिद्धान्तानुसार जो भूत में जीता है, वो वर्तमान में अप्रासंगिक हो जाता है। युग के साथ बदलती धारणाओं ने अपनी सुविधानुसार 'ऑर्गेज़्म' को ही प्रेम की कर्मस्थली बना दिया है।

और ये 'ऑर्गेज़्म' कोई सुरम्य वाटिका नहीं है, वरन एक घनघोर जंगल है जो अपनी सघन हरितिमा से लुभाकर अपनी भूलभुलैया में ऐसा भटकाता है जिससे बाहर आना दूभर हो जाता है। जंगल किसी मर्यादा, किसी अनुशासन, किसी पद्धति, किसी तरतीब को नहीं मानता। अतः राहें उलझती हैं और भटकाव उत्पन्न होता है। तो बेचारा प्रेम 'ऑर्गेज़्म' के इसी विकट जंगल में भ्रमित हो भटक रहा है।

यहां पर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि ये 'ऑर्गेज़्म' द्विपक्षीय है। इसमें स्त्री व पुरुष - दो घटक अपेक्षित हैं। यहाँ यह भी विवेचनीय है कि इन दोनों घटकों का 'ऑर्गेज़्म' सम है या विषम। स्त्री व पुरुष की शारीरिक व मानसिक संरचना प्राकृतिक रूप से पृथक है। उसी अनुसार उनकी आवश्यकताएं, धारणाएं, मान्यताएं व आचरण भी पृथक हैं। पुरुष प्रायः स्वभावतः उद्दंड और आत्मकेंद्रित कामी होता है।

वह अपनी कामना की पूर्ति हेतु ग्राह्य-अग्राह्य नहीं देखता। उसे अपने 'ऑर्गेज़्म' की सन्तुष्टि हेतु प्रेम का आधार नहीं चाहिए, वह मात्र क्षणिक आसक्ति पर ही आश्रित है। स्त्री का 'ऑर्गेज़्म' इतना छिछला नहीं है। वह प्रायः एक के प्रति ही समर्पित रहना चाहती है और उस समर्पण का आधार प्रथमतया प्रेम ही होता है। उसका 'ऑर्गेज़्म' मात्र अपने प्रिय पात्र के साथ ही सक्रिय होता है।

अन्यथा वह घर से बाहर निकलते ही जनसंकुल स्थानों पर गाहे-बगाहे प्राप्त होने वाले अवाञ्छित स्पर्शों से

इतना त्रस्त न होती और 'ईव-टीज़िंग' को अपराध न घोषित किया जाता और बलात्कार का तो अस्तित्व ही न रहता। स्त्री-पुरुष में ये बुनियादी भेद है, पुरुष किसी के प्रति भी दैहिक सुख की आकांक्षा में आकर्षित होकर जबरन उसे पाने की चेष्टा में विवेकहीन हो बर्बरता पर उतर सकता है, नितान्त भावविहीन होकर। किन्तु स्त्री पूर्वतः भावना के वशीभूत होती है और फिर अपने इच्छित व्यक्ति से ही दैहिक सुख की कामना करती है।

यह पृथक बात है कि आज की स्त्री नारी विमर्श की प्रतिकूल धारा में बहकर अपना मूल स्वभाव त्यागकर इस 'ऑर्गेज़्म' के जंगल में भी पुरुषों से होड़ लगाकर भटक रही है।

मात्र अपने पुरुषों के प्रति विद्रोह को किसी भी भांति सार्थक सिद्ध करने हेतु वह अपने स्वभाव के विपरीत आचरण कर रही है। मात्र तथाकथित समानता पाने हेतु वह कर्तव्यों का परित्याग कर अधिकारों को ही लक्ष्य मान बैठी है।

ऐसा नहीं है कि पूर्वकाल में इस 'ऑर्गेज़्म' की सत्ता नहीं थी। यह तो आदिम प्रवृत्ति है। इसी आदिम प्रवृत्ति को अनुशासित रखने हेतु प्राचीनकाल में नगरवधू व देवबालाओं जैसी प्रथाओं का अविष्कार किया गया होगा ताकि सम्पूर्ण समाज ही जंगल न हो जाए। यह प्रथाएं भी पुरुष के इस 'ऑर्गेज़्म' की ही देन थीं जो कालान्तर में विकृत होते-होते वेश्यावृत्ति में बदल गयी।

प्रारम्भ में किसी न किसी विवशतावश स्त्रियां इस पेशे में आतीं थीं या उपभोगितावाद के चलते जबरन लायी जाती थीं किन्तु आधुनिक युग में अब नारी विमर्श ने इसे नारियों का अधिकार व हथियार दोनों बना दिया है। पुरुष से समानता का भूत नारी की चेतना पर इस कदर हावी हुआ है कि आज के युग में 'कॉलगर्ल' जैसी संस्था पूर्णतः स्थापित हो गयी है।

इस नारी विमर्श ने ही नारी की किसी भी क्षेत्र में सफलता का आधार उसकी देह को ही बना दिया है। नारी विमर्श का यह स्वर इतना उद्धत हो चुका है कि नारी भी अब दैहिक सन्तुष्टि की कामना में कोई भी सीमा तोड़ सकती है। नारी की इसी प्रवृत्ति ने 'पुरुष वेश्या' नामक संस्था भी खड़ी कर दी है।

आज का प्रेम अध्यात्म का पोषक नहीं बल्कि भौतिकता का उपभोगी हो गया है। इस उपभोग की प्रवृत्ति ने ही बाज़ारवाद को जन्म दिया है। इस बाज़ारवाद ने प्रेम को भी एक बिकाऊ वस्तु बना दिया है। जो चीज़ बिकाऊ है वो या तो खरीदी जाती है या वो लूट ली जाती है।

वही 'ऑर्गेज़्म' में परिणत हुए प्रेम के साथ हो रहा है। यह सम्पूर्ण परिवेश उत्कट कामनाओं के एक सघन दुर्गम जंगल का रूप ले चुका है, जहां प्रेम हतप्रभ होकर लक्ष्यहीन सा भटक रहा है। जंगल, जहाँ कोई मर्यादा नहीं, कोई नियम नहीं, कोई अनुशासन नहीं; मात्र मनमानी का साम्राज्य है:

क्या है निज़ाम-ए-दौर कुछ मत पूछिए
हुज़ूर बस्ती भी 'मधु' को आजकल
जंगल दिखाई दे।

निबंध

निर्धनता का पोषक: हिन्दी साहित्य

शैली

भारत दर्शन की काव्य-संपादक, पुरवाई की सह-संपादक, लेखिका, अनुवादक
shaily2362@gmail.com

'साईं इतना दीजिए जा में कुटुम समाय..' आदर्श वाक्य की तरह कहा जाता है। पढ़ाई करते समय, क्या हम यह उद्देश्य लेकर चलते हैं कि, एक छोटी सी नौकरी करेंगे; जिससे अपने परिवार की रोज़ी-रोटी चला सकें? क्या यही उद्देश्य और आदर्श अपने बच्चों को देते हैं कि, बस पेट भरने का कमा लेना। इतनी ही पढ़ाई करना, कि ज़रूरत से ज़्यादा पैसा ना मिले?

आवश्यकता की परिभाषा क्या है? रोटी भूख भर, तन भर कपड़ा, सोने और दफ़न के लिए दो गज़ ज़मीन, प्राकृतिक आपदा से बचाने के लिए एक छत। क्या सभी व्यक्ति स्वेच्छा से इन्हीं ज़रूरतों को पूरा करने के साधन जुटाने का उद्देश्य रखते हैं? प्रचुर धन प्राप्ति की इच्छा नहीं करते?

सन्तोष का भी गुणगान किया जाता है, धन-धान्य, वैभव को तुच्छ और सन्तोष को सर्वोच्च मानवीय गुण माना जाता है - जब आवे संतोस धन सब धन धूरि समान - यह सन्तोष किस उम्र पर आना चाहिए? क्या बच्चा प्राइमरी पढ़ने के बाद सन्तोष कर ले तो मां-बाप भी संतोष कर लेंगे? पुत्र, कबाड़ बीन कर रोज़ी कमाने का दावा करे तो उसे संतोषी मान कर हम ख़ुश हो जाएंगे?

"धन संचय दुख देत है, धन त्यागे सुख होय।
रैदास सीख गुरु देव की, धन मति जोरे कोय॥"

क्या हमारा पिता सी.ओ.ओ. प्रचुर का वेतन छोड़ कर मज़दूरी करना चाहे, इस तर्क पर कि, मजदूर भी कुटुम्ब पालन करता है, तो स्वीकार होगा? ईश्वर को भी खड़ा कर देता है हिन्दी साहित्य:

"लहइ न फूटी कौड़िहू, को चाहै केहि काज।
सो तुलसी महँगो कियो, राम ग़रीबनिवाज॥"

ईश्वर को "ग़रीबनिवाज" कह कर निर्धनता को पोषित किया जाता है।

मदर्स/फ़ादर्स डे, आदि अंग्रेज़ी दिनों पर, हिन्दी-पटल, रचनाओं से पट जाते हैं। जिनका कथ्य कुछ ऐसा होता है - 'मां, ख़ुद गीले में सो, सूखे में बच्चा सुलाती है, 'ख़ुद भूखी रह, बच्चा पालती है।' 'मज़दूरी करती है,' 'पेड़-तले तपते पत्थर पर फटी चादर पर बच्चा सुलाती है,' 'पिता 'पेट पर बच्चे सुलाता है, 'सुबह अखबार की गड्डी के साथ बच्चे के सपने / ज़रूरत बांधता है, शाम को भूखा-थका, बेटे के लिए खिलौना / किताब / रोटी ...लाता है अपने सपने और भूख अखबारों के साथ बेचकर...'

है न हृदय विदारक? श्रोताओं की तालियां और सोशल मीडिया पर लाइक्स के ढेर। लिखने और प्रशंसा करने वाले यह नहीं सोचते कि, आज के परिवार नियोजन काल में; जिन लोगों के पास स्वयं के पेट भरने के साधन नहीं हैं, वो बच्चे पैदा ही क्यों करते हैं? कुछ विज्ञ-जन प्रश्न उठायेंगे कि, गर्भ निरोधक खरीदने के पैसे कहां हैं बेचारों के पास?

सरकार, सभी सरकारी अस्पतालों, पी.एच.सी, सी.एच.सी. एन.एम केंद्रों पर मुफ़्त में गर्भ-निरोधक उपलब्ध कराती है। साथ ही बच्चे पैदा कर,

पालने के खर्च की तुलना गर्भ-निरोधक खरीदना बहुत सस्ता सौदा है।

मान लेते हैं कि यौन इच्छा एक नैसर्गिक इच्छा है। इसे व्यक्ति पूरा करेगा तो बच्चे होंगे, प्रकृति का नियम है। लेकिन ये नियम, उस समय सत्य था जब गर्भ निरोधक नहीं थे, गर्भपात अनुपलब्ध या गैरकानूनी था। आज ऐसी स्थिति नहीं है। सिर्फ़ स्त्री भी अपना गर्भपात करा सकती है, पति की गवाही या गारंटी की आवश्यकता नहीं होती।

ऐसे में भीख मांगने के लिए, बाल-श्रमिक पैदा करने के लिए, ग़रीबी रेखा से नीचे जीने वाले, बच्चे पैदा करके समाज, राष्ट्र पर बोझ बढ़ाते हैं और हिन्दी साहित्य उन्हें नायक (हीरो) और नायिका (हीरोइन) बना कर जनता के सामने आदर्श रखता है कि- "बिना किसी प्लानिंग के बच्चे पैदा करो, हमारी कविताओं कहानियों में हीरो बनो हम तुम्हारी प्रशस्ति चारणों की भांति करेंगे..."

इसी तरह से मज़दूर दिवस पर बेगारी करने वाले, आधा पारिश्रमिक पाने वाले, मज़दूर यूनियन से पीड़ित मजदूरों का यशोगन करते हुए हिन्दी साहित्य दिखाई देगा। क्या ये लेखक वर्तमान काल के ज़मीनी सच से अनभिज्ञ हैं? ऑर्गेनाइज्ड सेक्टर के मज़दूर अपनी छोटी से छोटी माँग के लिए, एच. आर. मैनेजर को धमकियां देते हैं। गांव में भी मज़दूर भी एक-एक पैसे का हिसाब करते हैं और बात-बे-बात 'रपट' करा देते हैं। लेकिन हिन्दी साहित्य आज भी प्रेमचन्द काल में सांस ले रहा है।

शहरों में निजी और सरकारी कंस्ट्रक्शन कंपनी वालों से पूछिए कि, मज़दूर किस तरह, काम के स्तर पर चेतावनी देने पर, काम छोड़ कर भाग जाते हैं; क्योंकि गांव में परिवार को सरकारी मुफ़्त अनाज, गैस और मुफ़्त घर मिल रहा है। खाने और रहने की चिन्ता नहीं है।

मान लेते हैं कि स्थिति बहुत भयावह है। प्रश्न यह है कि, साहित्य किस प्रकार, आम-जन के सरोकारों को पूरा करता है? क्या कोई समाधान प्रस्तुत करता है? क्या मज़दूरों की आवाज़ किसी समर्थ अधिकारी या संस्था तक पहुंचाता है? बल्कि उसकी स्थिति का अतिवादी उल्लेख करके उसे अप्रत्यक्ष रूप से नक्सली या आतंकवादी बनने के लिए प्रेरित करता है, "तुम्हारे साथ अन्याय हो रहा है, जाओ अपना हक़ छीन लो..."। क्या यह उचित है?

मुख्य प्रश्न, जो मैं उठाना चाहती हूँ - पहले लिखी बातें उसकी भूमिका मात्र हैं - साहित्य को उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए, उसे कोई सामाजिक हित का सन्देश देना चाहिए। स्थापित साहित्यकारों की लिखी हुई ये बातें अक्सर पढ़ती हूँ कि "जो रचना आम-आदमी के सरोकारों को नहीं उठाती या उससे जुड़ी नहीं है, वो रचना, रचना नहीं है...
इत्यादि.."सरोकार माने? निर्धनों की दीन-दशा लिखकर पाठक में करुणा जगाना? कोई हल, कोई सुझाव देना क्या सरोकार नहीं है?

क्या लिखा, गोदान की कथा रचते हुए उपन्यास सम्राट ने, कोई हल बताया कि कैसे भविष्य में धनिया-होरी जैसे निर्धन, समृद्ध हो सकेंगे? क्या यही हल था कि समाज बदल जाये, सामाजिक ढांचा बदले; फलतः होरी जैसे निर्धन, ग़रीबी से मुक्त हो जायें?

ध्यातव्य है कि समाज, शासन और व्यवस्था धनाढ्यों के लिए भी वही होती है, जो तत्कालीन ग़रीबों के लिए। प्रश्न उठता है कि तत्कालीन धनिक वर्ग, धनाढ्य कैसे बना? ईश्वर ने छप्पर फाड़ कर धन दिया? सभी सुदामा थे, कृष्ण ने चूड़े के दो कौर खाए और राजपाट मिल गया? लेकिन अयोग्य को भाग्य से धन प्राप्ति हो भी जाए तो वह शीघ्र नष्ट हो जाता है।

उदाहरण के लिए अनिल अंबानी और मुकेश अंबानी का - दोनों भाइयों को करोड़ों का बराबर हिस्सा मिला, धीरू भाई अंबानी की बनाई 'रिलायंस इंडस्ट्रीज़' के उत्तराधिकार में। मुकेश अंबानी ने व्यापार को बढ़ाया जबकि अनिल अंबानी ने कुछ वर्षों में व्यापार को डुबो दिया। स्पष्ट है कि जो धनी हैं उनमें कुछ योग्यता होती है, तभी धनार्जन करते हैं और पीढ़ियों तक

धनी रहते हैं। अतः निर्धनता दुर्भाग्य या ईश्वर का प्रकोप नहीं, मनुष्य की अयोग्यता है।

मेरे प्रश्न पाठकों को पीड़ित कर रहे होंगे! आस्थाओं पर चोट लग रही होगी! लेकिन यही यथार्थ है। अक्सर मेरे मन में प्रश्न उठते हैं कि क्यों हिंदी साहित्य में सामान्यतः किसी निर्धन के परिश्रम की 'सक्सेस-स्टोरी' नहीं लिखी जाती कि अमुक बहुत ग़रीब था उसने इस तरह मेहनत की, ये योजनाएं बनाई और भविष्य में वह सफल व्यापारी और लखपति बना।

हाँ, इस तरह की कहानियां लिखी जाती हैं 'शेखचिल्ली के लिए', 'मुंगेरी लाल के हसीन सपने' की दुनिया के लिए... क्या हिन्दी साहित्य में, 'रैग्स टू रिचेज़' जैसा कोई उदाहरण नहीं है? क्या यहां सभी भूखे नंगे पैदा हुए और भूखे नंगे मर गए?

कई आधुनिक साहित्यकारों से मैंने निजी तौर पर बातें कीं और पूछा कि, क्या आप अपनी रचनाओं में निर्धनता को महिमामंडित (ग्लोरिफ़ाई) नहीं करते? क्यों करते हैं? आज के वैश्विक ग्राम (ग्लोबल विलेज) बने परिदृश्य में आर्थिक प्रगति की बात क्यों नहीं होती? क्यों किसी हिन्दी कहानी का नायक पूंजीपति का पुत्र या पुत्री नहीं होती?

वह, जिसने परिवार के व्यापार या संसाधनों को और बढ़ाया हो? क्यों किसी नायक-नायिका को, कानूनी धन अर्जित करके फ़ाइव-स्टार जीवन शैली जीते नहीं दिखाया जाता? क्यों क्रूज़ ख़रीदने वाला, प्राइवेट जेट और द्वीप खरीदने वाला किसी कहानी या कविता का नायक नहीं होता?

क्या कानूनी तरीके से धनाढ्य बना ही नहीं जाता? क्यों हर बड़े बिजनेस हाउस को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है? सामान्य धारणा बनायी जाती है कि सभी केवल हराम की कमाई करते हैं, सभी चोर हैं! जो निर्धन हैं, वे सच्चे हैं, ईश्वर निर्धनों को ही अपना सच्चा भक्त मानते हैं। फलतः यही निर्धन, हिन्दी साहित्य के चहेते नायक और नायिका होते रहे हैं और अभी कब तक होते रहेंगे यह भविष्य के गर्भ में है।

बेकारी, बेरोज़गारी को मात्र सरकारी और स्थाई नौकरी से जोड़ कर न देखा जाये। युवकों को स्वरोजगार और परिश्रम का मूल्य समझाया जाये, उन्हें यह संदेश दिया जाए कि अपने बाहुबल पर, अपनी योग्यता पर काम करें, अपने को किसी भी काम में निपुण बनायें। किसी भी संस्थान से सर्टिफिकेट लेने से योग्यता नहीं आती। आज साहित्यकार बेरोज़गारी का रोना-रोते थकते ही नहीं। जबकि वास्तविकता यह है बड़ी-बड़ी डिग्रियां लेकर आए हुए प्रार्थी को अपने विषय का ककहरा भी नहीं आता, निपुणता या योग्यता तो दूर की बात है।

आज की तथाकथित पढ़ी-लिखी पीढ़ी, रोज़गार-योग्य नहीं है। आर्थिक सर्वेक्षण 2023-24 के अनुसार, भारत की आबादी का 65% हिस्सा 35 वर्ष से कम आयु का है, और उनमें लगभग आधे युवाओं में आधुनिक अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक कौशल की कमी है।

सर्वे के अनुसार, देश के लगभग 51.25% युवा रोज़गार योग्य माने जा सकते हैं। अर्थात लगभग दो स्नातकों में से एक, कॉलेज से निकलने के तुंरत बाद रोज़गार के अयोग्य है। ध्यान देने वाली बात यह है कि पिछले दशक में यह प्रतिशत लगभग 34% से बढ़कर 51.3% हो गया है (लिंक नीचे दिया गया है)।

'नीट' जैसी परीक्षा में प्रश्नपत्र लीक कराना, परीक्षा में अनुचित साधनों का उपयोग करना, नित्य ही समाचारपत्रों की सुर्ख़ियां बनती हैं। ऐसे में बेरोजगारी का डंका पीटना और हर बात पर प्रशासन को दोषी ठहराना हिन्दी साहित्यकारों का व्यसन होता जा रहा है। काश ये साहित्यकार, रचनाकार, उन रोज़गार देने वालों का दर्द समझ सकते, जो योग्य अभ्यर्थी की खोज करते हैं। लेकिन उन्हें ऐसे योग्य व्यक्ति भारत में नहीं मिलते। योग्यता हो तो, मात्र 'लिंक्डइन' पेज पर अपनी योग्यता का उदाहरण देने से ही काम देने वाले आपको सिर माथे बैठाएंगे।

लेकिन यथार्थ से परिचित करातीं और प्रेरणा देती बातें, मैंने अधिकांश

कहानी, कविता, व्यंग्य या आलेख में नहीं देखीं। दिखाई देता है - बहुत बेकारी है, बेरोज़गारी है, युवाओं को अनुबंध पर सीमित अवधि के लिए नौकरी मिलती है का विधवा-विलाप... सभी को स्थाई यानी परमानेंट नौकरी चाहिए, संविदा पर कार्य करने में दिक्कत है क्योंकि योग्यता का सतत परीक्षण न हो? कार्य दक्षता के लिए कोई पैमाना न हो?

सरकारी विभाग यथा पोस्ट ऑफ़िस, स्टेट बैंक, खादी (गांधी आश्रम) जैसी संस्थाओं की कार्य-दक्षता (?) के स्तर पर काम करने की छूट और पूरी पगार, सेवानिवृत्ति तक नौकरी की गारंटी जब तक न मिले, युवा वर्ग बेरोज़गार माना जाता है। अस्थाई और संविदा के रोज़गारों की आलोचना और तीखे कटाक्ष करते लेख, व्यंग्य, कहानियाँ और कविता आए दिन प्रकाशित होती हैं। क्यों और कब तक हिन्दी साहित्य-जगत निर्धनता, अकर्मण्यता और अयोग्यता के पक्षधर के रूप में खड़ा रहेगा? क्यों वर्तमान सच और परिवर्तनों को अंगीकार नहीं करता?

आज के युग में जब वेतन, व्यापार आदि सभी के लेन-देन, खर्च, कमाई आदि का लेखा-जोखा ऑनलाइन देना आवश्यक है, तो भी धनिक वर्ग को और धन को खलनायक की तरह प्रस्तुत किया जाता है?

क्या इसी तरह देश की आर्थिक उन्नति सम्भव है? क्या आज भी कुटीर उद्योग और चरखा चलाने से आर्थिक दशा सुधरेगी? क्या आज भी पूर्ण सरकारी विभागों की अंतहीन अकर्मण्यता (सभी को अनुभव होगा, शुद्ध सरकारी विभागों का और प्राइवेट संस्थानों का) से ही देश की प्रगति होगी? क्या निजीकरण को गलत ठहराने से देश का विकास होगा? क्या लालफ़ीताशाही ही इस देश का आदर्श बना रहेगा?

आज विचार करने का समय है कि वैश्विक आर्थिक नीतियों को समझा जाए। न्यायसंगत तरीकों से भी धन अर्जित किया जा सकता है। इस विषय में हमारे हिंदी साहित्यकार अपना ज्ञान बढ़ाएं और शून्य से शुरू करके लाखों करोड़ों का एम्पायर खड़ा करने वाले नए युग के उद्यमियों को नायक बना कर हिंदी का नया साहित्य लिखा जाए; जिससे हिन्दी गरीबों की भाषा मात्र बन कर ना रह जाए। हिंदी चाय के ढाबों और पान की दुकान पर गपबाज़ी करने वालों के बीच तक सीमित ना रह जाय!

कविता

बीमार है मुल्क

राजवर्धन आज़ाद

बीमार है मुल्क

हवा लिये कन्धे पर ,
हवा को ढूँढ रहे हैं ।
बिस्तर लिये सर पर,
घर को ढूँढ रहे हैं।

बीमार है मुल्क।
बीमार है कुर्सियाँ ।
बीमार हकीम से,
हम दवा पूँछ रहे हैं ।

श्मशान में है भीड़ ,
हम घाट ढूँढ रहे हैं ।
बचें है जो लोग,
चालीसा पढ़ रहे हैं ।

कुदरत का है क़हर।
परवरदिगार बेख़बर।
हर गाँव हर शहर ,
हम रहमत ढूँढ रहे हैं ।

आलेख

परिवर्तन चहुँओर: हर पेशे में आएगी एआई की चुनौती

बालेन्दु शर्मा दाधीच

लेखक सुविख्यात तकनीकविद्, संप्रति दुबई स्थित एल्गो टेक्नॉलॉजीज के सीईओ और माइक्रोसॉफ़्ट के पूर्व निदेशक

balendu@gmail.com

आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस (कृत्रिम बुद्धिमत्ता या एआइ) कामकाज के हर क्षेत्र पर असर डालने वाली है, भले ही फ़िलहाल हमें इस बात का अंदाज़ा न हो कि क्या हमारा पेशा भी इससे प्रभावित होगा। इस आधुनिक तकनीक से अनेक क्षेत्रों में पेशेवरों के लिए अकल्पनीय किस्म की सुविधाएँ सामने आ रही हैं और विकास के नए रास्ते खुलने की भी उम्मीद है। लेकिन कामकाज के तौर-तरीकों में कुछ ऐसा बदलाव आ सकता है कि खुद को नई तकनीक के लिए तैयार न करने वाले लोग पिछड़ सकते हैं। जो लोग एआई का लाभ उठाने में सक्षम होंगे, वे दूसरों से ज़्यादा तरक्की करेंगे। जो लोग इस बदलाव को अनदेखा कर देंगे, वे घाटे की स्थिति में रहेंगे। बिल्कुल उसी तरह, जैसे पहली बार कंप्यूटरों के आने पर हुआ था।

पिछले दिनों विश्व आर्थिक मंच (दावोस) ने नौकरियों और कारोबारों पर आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के संभावित असर को लेकर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट जारी की है, जिसमें कहा गया है कि आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस सन 2030 तक जितनी नौकरियों को खत्म करेगी उनकी तुलना में 7.8 करोड़ अधिक नौकरियाँ पैदा करेगी। यानी हिसाब-किताब के लिहाज़ से नेट पॉज़ीटिव। रिपोर्ट के अनुसार सन 2030 तक जहाँ 9.2 करोड़ नौकरियाँ एआइ की वजह से चली जाएंगी, वहीं कुल 17 करोड़ नई नौकरियाँ पैदा होंगी, जो खासकर डिजिटल और ग्रीन इकॉनमी में होंगी।

लेकिन यह 'नेट पॉज़ीटिव' एक क्रूर सच छुपा रहा है। माना कि 17 करोड़ नौकरियां डिजिटल और हरित क्षेत्रों में आएंगी लेकिन जो 9.2 करोड़ नौकरियाँ गायब होंगी, उनका क्या होगा? ये दोनों किस्म की नौकरियाँ अलग-अलग वर्गों से आती हैं। जिस रिसेप्शनिस्ट की नौकरी गई वह एआई सिस्टम आर्किटेक्ट नहीं बन सकती। जिस अकाउंटेंट का काम खत्म हुआ, वह रिन्यूएबल एनर्जी इंजीनियर नहीं बन सकता। इस समय एआई-कायाकल्प के लिहाज़ से दुनिया एक संक्रमण काल से गुज़र रही है। माना कि कुछ साल बाद बड़ी संख्या में एआई-जनित नई नौकरियाँ दिखाई देंगी लेकिन वर्तमान नौकरियाँ जो आज ही खत्म हो रही हैं, उनका क्या?

कहाँ कैसे बदलाव

शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक, ट्यूटर और विद्यार्थी सभी का काम एआई से प्रभावित होगा। अब शिक्षकों को एआई-आधारित टूल्स सीखने की ज़रूरत होगी। उन्हें ध्यान में रखना होगा कि एआई-आधारित ज्ञान के इस नए दौर में वे अपने ही शिष्यों से न पिछड़ जाएँ। शिक्षण संस्थान उम्मीद करेंगे कि उनके खर्चे घटाने और पढ़ाई की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए एआई का भरपूर इस्तेमाल किया जाए।

आज एआई न सिर्फ पाठ्यक्रमों की रूपरेखा बना सकती है, सामग्री तैयार कर सकती है, प्रश्न पत्र बना सकती है बल्कि प्रश्न पत्रों को जाँच भी सकती है। वह प्रबंधन के काम में भी मदद कर सकती है और दस्तावेज़ बनाने में भी। इससे शिक्षकों और दूसरे कर्मचारियों की मांग में कमी आ सकती है क्योंकि काम का कुछ बोझ

एआई को सौंपा जा सकता है। ट्यूशन के लिए एआई आधारित एप्लीकेशन आ रही हैं। विद्यार्थियों के लिए ज्ञान जुटाना, जटिल अवधारणाओं को समझना आसान हो जाएगा। ऐसे प्लेटफ़ॉर्म आ गए हैं जिसमें हर बच्चे को उसकी निजी आवश्यकता के अनुरूप पढ़ाया जा सकेगा। पारंपरिक शिक्षकों के लिए यह सब बदलाव चुनौतीपूर्ण है, क्योंकि उन्हें तकनीकी प्रशिक्षण और निरंतर कौशल-विकास की ज़रूरत होगी।

बड़ी कंपनियों के साथ-साथ छोटे व्यवसाय भी अब एआई आधारित स्वचालन (ऑटोमेशन) की तरफ बढ़ेंगे। कामकाज में डेटा की भूमिका बढ़ जाएगी और बहुत से पारंपरिक काम तकनीक के हवाले कर दिए जाएंगे। छोटे व्यवसायों को बदलने में समय लगता है इसलिए यह सब होने में शायद पाँच से दस साल की अवधि लग जाए। लेकिन ऑटोमेटेड इन्वेंट्री, बिलिंग, और ग्राहक सेवा के कारण कई पारंपरिक नौकरियों के सामने संकट आ सकता है जैसे कैशियर, सेल्स असिस्टेंट, कर का ब्योरा दाखिल करने वाले, क्लर्क आदि।

सरकारी दफ्तरों में वर्षों से चली आ रही प्रक्रियाएँ अब एआई के कारण बदलने लगी हैं। ऑटोमेशन से दफ्तर के मैनेजमेंट, फाइलिंग, डेटा एंट्री और शिकायत निवारण जैसे कार्यों में मानवीय हस्तक्षेप कम हो रहा है। इससे निचले तथा मझौले स्तर के सरकारी कर्मचारियों की पारंपरिक भूमिका सीमित हो रही है। एआई के कारण प्रशासनिक और क्लर्क जैसे पदों की आवश्यकता कम हो सकती है। बाकी लोगों को अपने तकनीकी कौशल को बेहतर बनाने पर ध्यान देना होगा।

कस्टमर केयर का काम करने वाले लोगों को सतर्क रहने की ज़रूरत है। बात एआई चैटबॉट्स से आगे निकल रही है। अब ऑटोमैटिक ढंग से चलने वाले कॉल सेंटर स्थापित होने लगेंगे। आगे चलकर ग्राहकों से टेलीफोन करने का काम तक एआई के हवाले किया जा सकेगा। एआई चौबीसों घंटे, सप्ताह के सातों दिन काम करने में सक्षम है और उसे वेतन देने की ज़रूरत नहीं है। ग्राहक सेवा में पहले मानवीय संवाद, सहानुभूति और व्यक्तिगत जुड़ाव को महत्व दिया जाता था। अब चैटबॉट्स और ऑटोमेटेड कॉल सेंटर के कारण यह संस्कृति बदल रही है, जिससे ग्राहक सेवा प्रतिनिधियों की भूमिका सीमित हो गई है। पारंपरिक ग्राहक सेवा कौशल अब पर्याप्त नहीं हैं।

इंसान की जगह एआई

आईटी सेक्टर में टीम वर्क, कोडिंग और समस्या-समाधान की पारंपरिक संस्कृति अब बदल रही है। वहाँ एआई-आधारित ऑटोमेशन और कोड जनरेशन टूल्स का दखल बढ़ चला है। इंसानों का बहुत सा काम एआई संभाल सकती है जिससे काम की रफ्तार बढ़ेगी और लोगों की संख्या घटाने का दबाव बढ़ेगा। शुरुआती स्तर पर जिन नौकरियों के लिए भर्ती होती है, उनमें अवसर घटने लगे हैं, जैसे कोडिंग, टेस्टिंग और बेसिक एनालिटिक्स। इस सेक्टर में अब केवल कोडिंग या तकनीकी ज्ञान पर्याप्त नहीं है— एआई, मशीन लर्निंग, और डेटा साइंस जैसे नए कौशल महत्वपूर्ण हो गए हैं। पहले कंप्यूटर ऑपरेटर डेटा एंट्री, रिपोर्ट जेनरेशन, और बेसिक एनालिटिक्स जैसे कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। अब ये कार्य स्वचालित ढंग से होने लगे हैं, जिससे उनकी भूमिका सीमित हो गई है।

कला, रचनात्मकता और मीडिया जैसे क्षेत्रों को अब तक तकनीकी दखल से लगभग सुरक्षित माना जाता रहा है क्योंकि उनमें इंसान से रचनात्मक प्रतिभा की अपेक्षा की जाती है। लेकिन चैटजीपीटी, कोपायलट, जेमिनी और इसी तरह के जनरेटिव एआई मॉडलों ने सिद्ध कर दिया है कि वे भी रचनात्मक हो सकते हैं। कहानी, कविता, स्क्रिप्ट, चित्र, वीडियो और संगीत तक तैयार करने की क्षमता एआई में आ गई है। जो काम करने में इंसान को कुछ दिन, सप्ताह या महीने लगते थे उसे एआई कुछ मिनट या घंटों में कर सकती है और बहुत संभव है कि तब भी उसकी गुणवत्ता इंसान के काम से बेहतर हो। एआई जनित अनुवाद अब काफी बेहतर हो गया है। अब बहुत कम खर्च में बहुत अच्छा रचनात्मक काम करना

संभव हो गया है जो हममें से बहुतों के लिए एक बड़ा अवसर सिद्ध हो सकता है। लेकिन पहले से इन कामों में लगे लोगों पर निर्भरता घटती चली जाए, यह भी असंभव नहीं है। उदाहरण के लिए एक फिल्म के निर्माण में अगर पहले तीन-चार सौ लोगों की ज़रूरत पड़ती थी तो बहुत संभव है कि अब इससे आधे या चौथाई लोग ही वह काम करने के लिए पर्याप्त हों। कला, लेखन और मीडिया में व्यक्तिगत रचनात्मकता, मौलिकता और मानवीय संवेदनाएँ हमेशा से केंद्र में रही हैं। लेकिन धीरे-धीरे एआई भी ऐसी क्षमताएँ अर्जित कर रही है।

मार्केटिंग में पहले उपभोक्ता की समझ, रचनात्मकता और मानवीय संवाद को महत्व दिया जाता था। आज की मार्केटिंग के केंद्र में डेटा और उसका विश्लेषण है। किस जगह, किस उम्र, किस आय वर्ग के लोगों को क्या चाहिए और वे किस उत्पाद की तलाश कर रहे हैं, इस तरह का डेटा आज स्वचालित प्लेटफॉर्मों से मिलने लगा है।

सही व्यक्ति को सही सूचना या विज्ञापन दिखाकर पहले से कहीं बेहतर नतीजे मिलने लगे हैं। ऑटोमेटेड विज्ञापन, सोशल मीडिया मैनेजमेंट और कस्टमर एनालिटिक्स के कारण मार्केटिंग की पारंपरिक नौकरियों में कटौती संभव है। कंपनियाँ अब कम कर्मचारियों में अधिक काम करवा सकती हैं।

बढ़ती सुविधाएँ, घटते लोग

चिकित्सा के क्षेत्र में बहुत बड़ा बदलाव आ सकता है। ताजा अध्ययनों के अनुसार बीमारी की पहचान करने, सही निदान सुझाने, डायग्नोस्टिक परीक्षणों (एक्सरे, एमआरआई, सिटी स्कैन, अल्ट्रासाउंड, ईसीजी आदि) को पढ़ने में एआई इंसानों के बराबर स्तर पर आ गई है। अस्पतालों के प्रबंधन में तकनीक की भूमिका बढ़ रही है। टेलीमेडिसिन के कारण मरीजों को डॉक्टर दूर से ही देख सकते हैं। मरीज की देखभाल करने तथा सही समय पर दवाएँ देने जैसे काम धीरे-धीरे एप्लीकेशनों के हवाले किए जा सकते हैं। आप आसानी से कल्पना कर सकते हैं कि एक तरफ जहाँ रोगियों को बेहतर सूचनाएँ तथा इलाज मिलने की संभावना बढ़ी है वहीं दूसरी तरफ डॉक्टरों, नर्सों, लैब असिस्टेंटों आदि के लिए चुनौतियाँ खड़ी हो सकती हैं।

बैंकों और वित्त क्षेत्र में भी चिकित्सा क्षेत्र की ही तरह बड़े बदलाव के आसार हैं। बैंकिंग में पहले ग्राहक सेवा, अनुभव और मानवीय निर्णयों को महत्व दिया जाता था। अब एआई-आधारित फ्रॉड डिटेक्शन, लोन अप्रूवल और कस्टमर सर्विस ने अपनी महत्ता सिद्ध कर दी है और बैंकों की कार्य संस्कृति बदल रही है। इन्हीं बैंकों ने पहले कंप्यूटरीकरण के प्रभाव को देखा है। अब वहाँ एआई आधारित बदलावों का सिलसिला शुरू हो सकता है। कर्मचारियों से उम्मीद रहेगी कि वे एआई टूल्स, डेटा एनालिटिक्स और डिजिटल बैंकिंग प्लेटफॉर्मों के इस्तेमाल में दक्ष हों। पारंपरिक बैंकिंग अनुभव लंबे समय तक पर्याप्त नहीं रहेगा।

इन सभी चुनौतियों के बावजूद, एआई से उत्पादकता, दक्षता, और नवाचार के नए द्वार भी खुल रहे हैं। जो लोग समय रहते नए कौशल सीख लेंगे, वे बदलाव के इस दौर में आगे रहेंगे। एआई को सिर्फ तकनीकी चमत्कार के रूप में देखना और उसके आश्चर्यजनक कारनामों पर चर्चा करना आपको बहुत आगे लेकर नहीं जाएगा। अब हमें फिर एक बार अपना कौशल बढ़ाने के लिए तैयार होना पड़ेगा। नहीं बदले तो पिछड़ जाएंगे।

आलेख

नरेंद्र कोहली जी की रचनाओं में व्यंग्य का सामाजिक और साहित्यिक संदर्भ

विवेक रंजन श्रीवास्तव

ई-अभिव्यक्ति पोर्टल के संपादक, व्यंग्यकार, समीक्षक, ब्लागर
shrivastavavivekranjan@gmail.com

नरेंद्र कोहली (1940-2021) हिंदी साहित्य के ऐसे स्तंभ थे, जिनकी लेखनी ने मिथकीय महाकाव्यों से लेकर आधुनिक सामाजिक विसंगतियों तक को समान गहराई से छुआ। उनके व्यंग्य की तीक्ष्णता केवल विनोद तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह सामाजिक सर्जरी का औजार थी, जो समाज के अंतर्विरोधों, राजनीतिक भ्रष्टाचार, शैक्षिक पतन और नैतिक मूल्यों के क्षरण को बेपर्दा करती थी।

कोहली जी के व्यंग्य का मूल स्रोत उनका गहन मानवीय अवलोकन और सजग नागरिक की आक्रोशित चेतना थी। उन्होंने अपने लेखन की शुरुआत ही व्यंग्य से की थी, जैसा कि वे स्वीकार करते हैं, "मेरे मित्रों का कहना है कि मेरी आरंभिक रचनाओं में भी चाहे वे कहानियां हों अथवा निबंध, व्यंग्य का थोड़ा बहुत अंश है"। उनकी व्यंग्य दृष्टि किसी सतही मनोरंजन से आगे बढ़कर सामाजिक विडंबनाओं के प्रति प्रतिरोध का स्वर थी, जो पाठक को हँसाते-हँसाते उसकी चेतना को झकझोर देती थी। उनके शब्दों में, "अनुचित अन्यायपूर्ण

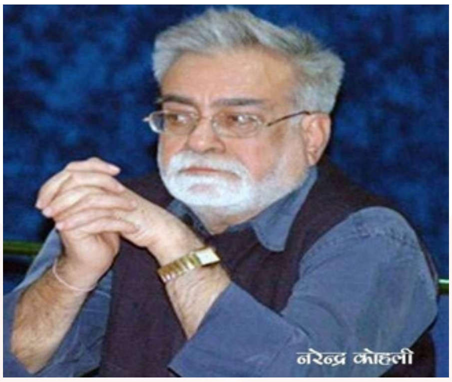

अथवा गलत होते देखकर जो आक्रोश जागता है, वह अपनी असहायता में वक्र होकर जब अपनी तथा दूसरों की पीड़ा पर हँसने लगता है तो वह विकट व्यंग्य होता है। वह पाठक के मन को चुभलाता-सहलाता नहीं, कोड़े लगाता है"। इसी तीखेपन ने उनके व्यंग्य को साहित्यिक उत्कृष्टता और सामाजिक प्रासंगिकता प्रदान की।

कोहली जी के व्यंग्य की सबसे बड़ी शक्ति उसकी विषयवस्तु की विविधता और गहराई में निहित है। उन्होंने भ्रष्ट शिक्षा तंत्र पर "डॉक्टर, स्मगलर और देश की सीमा" जैसी रचनाओं में करारा प्रहार किया, जहाँ पिता अपने बेटे को डॉक्टर बनाने के लिए परीक्षा में नकल करवाने की सलाह देता है और बेटा वास्तव में "स्मगलर" बनना चाहता है। यह कहानी शिक्षा के वाणिज्यीकरण और नैतिक पतन की ओर इशारा करती है। राजनीतिक भ्रष्टाचार पर उनकी पैनी दृष्टि "गणतंत्र का गणित" और "आत्मा की पवित्रता" जैसे संग्रहों में मुखर हुई। "आधुनिक लड़की की पीड़ा" जैसी रचनाओं में उन्होंने नारीवाद के नाम पर महिलाओं के खिलाफ होने वाले छद्म विमर्श को उजागर किया।

उनके व्यंग्य की विशेषता यह थी कि वे सामाजिक विषमताओं को उनके मूल रूप में प्रस्तुत करके ही उनका मखौल उड़ा देते थे। उनका मानना था कि "व्यंग्य रचना पढ़ने वाले को आक्रोशित न कर दे, वह सफल व्यंग्य नहीं है"। उनकी यह दृष्टि उनके उपन्यासों तक में व्याप्त थी। "आतंक" जैसे उपन्यास में आधुनिक जीवन की विसंगतियों को उन्होंने बड़े ही कलात्मक ढंग से व्यंग्य का विषय बनाया।

उनके महाकाव्यात्मक उपन्यासों जैसे "महासमर" और "अभ्युदय" में भी व्यंग्य के तत्व मौजूद थे, जहाँ

पौराणिक पात्रों के माध्यम से आधुनिक सामाजिक रोगों की पहचान की गई। अपनी इस क्षमता के बारे में स्वयं कोहली कहते हैं: "मैंने जब व्यंग्य लेखन आरंभ किया तो मेरा सबसे पहले लक्ष्य मेरे आसपास के लोग थे"। यही सामीप्य उनके व्यंग्य को सार्वभौमिक बना देता था।

व्यंग्य के क्षेत्र में कोहली की भाषा शैली उनकी सबसे बड़ी पहचान थी। उनके व्यंग्य में शब्दों की चुनौती, वक्रोक्तियाँ और लाक्षणिकता एक साथ मिलती थीं। वे साधारण बोलचाल के शब्दों को भी व्यंग्यात्मक संदर्भ देकर उनमें नया अर्थ भर देते थे। "एक और लाल तिकोन" जैसे शीर्षक ही उनकी इस क्षमता के प्रमाण हैं। उनके नाटकों में व्यंग्य का तीखापन विशेष रूप से उभर कर आता है। "शंबूक की हत्या" और "हत्यारे" जैसे नाटकों में उन्होंने सामाजिक अन्याय और राजनीतिक दोगलेपन पर करारे प्रहार किए।

"गारे की दीवार" नाटक तो भ्रष्ट नौकरशाही और सामाजिक विषमता पर तीखा व्यंग्य है। उनकी कहानियाँ जैसे "नमक का क़ैदी", "निचले फ़्लैट में" और "संचित भूख" आम आदमी की पीड़ा और सामाजिक विसंगतियों को बिना लाग-लपेट के प्रस्तुत करती हैं। कोहली के व्यंग्य की एक विशेषता यह थी कि वे अपने व्यक्तिगत दुखों को भी व्यंग्य का विषय बनाने से नहीं चूकते थे। अपनी

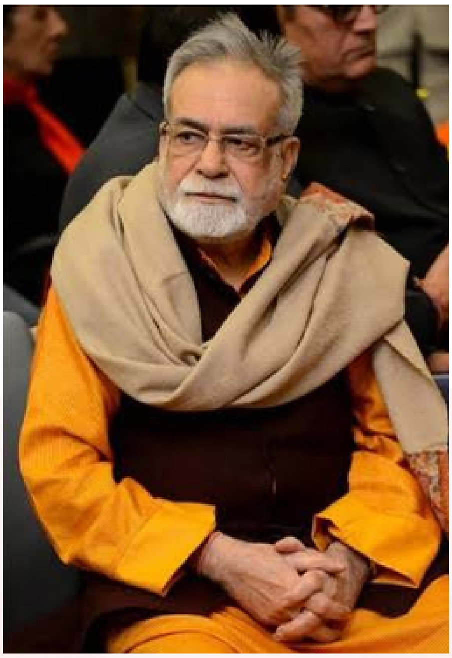

संतान की मृत्यु जैसे दुखद प्रसंग पर वे लिखते हैं: "अपनी पीड़ा का ही उपहास किया। अपने घावों को छील-छीलकर स्वयं को रुलाया। इसी अवस्था में 'अस्पताल' तथा अन्य एब्सर्ड उपन्यास तथा अनेक अन्य व्यंग्य-रचनाएं लिखी गयीं"।

कोहली के व्यंग्य में ऐतिहासिक और पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग एक विशिष्ट आयाम जोड़ता था। उन्होंने रामायण और महाभारत के पात्रों को आधुनिक संदर्भों में प्रस्तुत करके यह सिद्ध किया कि मानवीय स्वभाव और सामाजिक विसंगतियाँ कालातीत हैं। "महासमर" शृंखला में महाभारत के पात्रों के माध्यम से आधुनिक राजनीतिक संघर्षों को दर्शाया गया है। इसी प्रकार "अभ्युदय" में रामकथा को वर्तमान सामाजिक संदर्भों से जोड़ा गया है।

कोहली इस बात पर जोर देते थे कि पुराणों के राक्षस आज भी सक्रिय हैं, "आजकल के समाचार पत्र पढ़ लें, क्या उनमें चार से अधिक पृष्ठ राक्षसों के कृत्यों से नहीं भरे होते हैं"। उनकी यह पौराणिक समानताएँ व्यंग्य को गहन दार्शनिक आधार प्रदान करती थीं। कोहली का मानना था कि व्यंग्यकार को व्यापक साहित्यिक फलक से जुड़ना चाहिए। वे कहते थे: "जितना व्यापक आप पढ़ेंगे उतना ही व्यापक आपका दृष्टिकोण भी होगा"। यही व्यापकता उनके व्यंग्य को सतही हास्य से ऊपर उठाकर सामाजिक आलोचना का सशक्त माध्यम बनाती थी।

हिंदी साहित्य में व्यंग्य की परंपरा को कोहली ने न केवल आगे बढ़ाया बल्कि उसे नया आयाम भी दिया। शरद जोशी जैसे व्यंग्यकारों की परंपरा में उन्होंने व्यंग्य को केवल मनोरंजन तक सीमित न रखकर उसे सामाजिक परिवर्तन का हथियार बनाया। उनके व्यंग्य की प्रासंगिकता इस तथ्य से सिद्ध होती है कि उनकी रचनाएँ आज भी उतनी ही प्रभावशाली हैं, जितनी उनके लिखे जाने के समय थीं।

भ्रष्टाचार, जातिवाद, धार्मिक कट्टरता और राजनीतिक अवसरवाद जैसे विषय आज भी उतने ही ज्वलंत हैं। कोहली के व्यंग्य की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे सत्ता के समक्ष सत्य को खड़ा करने का साहस रखते थे। उन्होंने कहा था: "जब भी आप पाप के विरुद्ध गांडीव उठाएंगे आपके समक्ष आपके अपने ही खड़े होंगे"।

उनकी रचनाएँ "जगाने का अपराध", "आश्रितों का विद्रोह" और "पाँच ऐब्सर्ड उपन्यास" जैसे संग्रह आज भी हिंदी व्यंग्य साहित्य की धरोहर हैं। इनमें समकालीन समाज का ऐसा यथार्थ चित्रण है जो पाठक को झकझोर देता है।

नरेंद्र कोहली का व्यंग्य साहित्य केवल विनोद का साधन नहीं था; यह सामाजिक दस्तावेज था जो भारतीय समाज के परिवर्तनशील चेहरे को दर्ज करता था। उनके व्यंग्य की प्रभावशीलता इसी में थी कि वे जटिल सामाजिक-राजनीतिक मुद्दों को सरल और रोचक शैली में प्रस्तुत कर देते थे। उनके लेखन में व्यंग्य और गंभीर साहित्य का अद्भुत समन्वय था।

कोहली ने अपने जीवनकाल में लगभग सौ पुस्तकें लिखीं, जिनमें व्यंग्य की महत्वपूर्ण उपस्थिति रही। पद्मश्री, शलाका सम्मान और व्यास सम्मान जैसे प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित कोहली हिंदी साहित्य के ऐसे रचनाकार थे जिन्होंने व्यंग्य को समाज का आईना दिखाने का सशक्त माध्यम बनाया।

उनकी रचनाओं में व्यंग्य का संदर्भ केवल साहित्यिक नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिरोध का स्वर था जो सत्ता और समाज के विरुद्ध सच बोलने का साहस रखता था।

आज भी जब भ्रष्टाचार, सामाजिक अन्याय और नैतिक पतन के नए-नए रूप सामने आते हैं, तो कोहली का व्यंग्य हमें याद दिलाता है कि साहित्य का कर्तव्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का निर्माण भी है।

उनकी रचनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि सच्चा व्यंग्य वही है जो पाठक को हँसाते-हँसाते विचार करने को विवश कर दे और परिवर्तन की प्रेरणा दे।

आलेख

हिंदी काव्य में पर्यावरणीय सतर्कता और हृदयस्पर्शी अभिव्यंजन

मनोज कुमार रजक
शोधार्थी (पीएचडी) कलकत्ता विश्वविद्यालय
mkrajak22@gmail.com

भारतीय संस्कृति सदैव पर्यावरण की पोषक रही है। वेदों, उपनिषदों आदि ग्रन्थों में मनुष्य के स्वस्थ जीवन के लिए पर्यावरण को बहुत महत्व दिया गया है। पर्यावरण विमर्श को लेकर समकालीन दौर में हिंदी साहित्य के रचनाकार कविता, कहानी, उपन्यास व अन्य विधाओं में चिंता-चेतना-चिंतन के समीकरण से गुज़र रहे हैं। प्राचीन युग से ही धर्म, दर्शन, कला और साहित्य जैसे सभी क्षेत्रों में प्रकृति को विशेष महत्व मिला है, परन्तु काव्य ने उसे सबसे ऊंचे मुक़ाम तक पहुंचाया है।

भारतीय संस्कृति में प्रकृति से सामंजस्य स्थापित करने की परंपरा सदा से रही है, प्रकृति के सभी उपादानों जल, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, वनस्पतियों और जीव-जन्तुओं को पूज्य मानने की परंपरा रही है जो पर्यावरण के संरक्षण से जुड़ी है। प्राचीन युग में कोई राष्ट्रीय वन नीति या पर्यावरण संरक्षण पर काम करने वाली संस्थाएँ नहीं थीं। पर्यावरण का संरक्षण हमारे नियमित क्रिया-कलापों से ही जुड़ा हुआ था। पहले प्रकृति को ज्ञानस्थली, तपोस्थली तथा कर्मस्थली माना जाता था। प्राचीन युग में ऋषि मुनियों का आश्रय और ज्ञान का केन्द्र ही वनों में होता था। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी अपने निबंध 'कुटज' में लिखते हैं: 'यह धरती मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ। इसीलिए मैं सदैव इसका सम्मान करता हूँ और मेरी धरती माता के प्रति नतमस्तक हूँ।' हिन्दी साहित्यकारों ने सदा से ही प्रकृति से तादात्मय स्थापित कर प्राकृतिक विध्वंस को रोकने और प्राकृतिक संसाधनों का सम्मान करने की प्रेरणा दी है।

हिन्दी साहित्य के अलग-अलग कालों में प्रकृति आलम्बन, उद्दीपन, सखी, सहचरी, उपदेशक आदि के रूप में चित्रित हुई है, पर वर्तमान परिस्थिति में प्रकृति चित्रण के स्वरूप में विशाल परिवर्तन आया है। आज प्रकृति केवल आलम्बन, उद्दीपन, सखी, सहचरी और उपदेशक के रूप में ही चित्रित नहीं हो रही है, बल्कि पर्यावरण प्रदूषण के विभिन्न रूपों जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, प्रकाश प्रदूषण, मिट्टी प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण से मानव जीवन के साथ-साथ समस्त जीव-जन्तुओं, पेड़-पौधों, नदी-तालाबों, पर्वत-पहाड़ों और मौसम-जलवायु पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का भी चित्रण हो रहा है। मनुष्य की अदम्य लालसाएँ ही पर्यावरण प्रदूषण की मूल वजह है। समकालीन दौर में आई पर्यावरणीय चर्चा पहले के पर्यावरणीय चित्रण से पूरी तरह से भिन्न है। भिन्न इस मायने में है कि आधुनिक काल तक जो पर्यावरण के संबंध में हिन्दी साहित्य में लिखा गया, वह पर्यावरण-विमर्श के तहत नहीं लिखा गया; वहाँ मात्र उद्दीपन या आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण हुआ है। समकालीन दौर में जो साहित्य लिखा जा रहा है, उसमें पर्यावरण विमर्श सम्मिलित है। पर्यावरण में आए असंतुलन ने पर्यावरण विमर्श को जन्म दिया, ऐसा कहना गलत नहीं होगा।

हिंदी साहित्य की काव्य परंपरा में आदिकाल से लेकर समकालीन युग तक पर्यावरण से जुड़ी रचनाएं बृहद मात्रा में उपलब्ध है। हिन्दी के आदिकाल में रासो साहित्य में प्रकृति का आलम्बन और उद्दीपन के रूप में चित्रण हुआ है। भक्तिकालीन

कवियों की उपासना या साधना में आध्यात्मिक तन्मयता व एकनिष्ठता का भाव विद्यमान रहा है। ऋग्वेद के अनेक सूक्त, रामायण, महाभारत के आख्यान, सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य और पाश्चात्य साहित्य की सर्जनाएँ प्रकृति से ही आरम्भ होती है। तुलसीदास रामचरितमानस के 'किष्किन्धा काण्ड' में यह लिखते हैं: 'क्षिति जल पावक गगन समीरा, पंच रचित अति अधम सरीरा।' अर्थात हमारा शरीर पंचतत्व - पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि और वायु से मिलकर निर्मित हुआ है। ये पंचतत्व पर्यावरण के अभिन्न अंग हैं; इसके अभाव में मानव जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। वे प्रकृति के रूप, रस, सौंदर्य और गंध से अभिभूत होकर ही कला और साहित्य की मर्मज्ञता को जान पाने में सक्षम हुए हैं। प्रकृति को धर्म, दर्शन, कला और साहित्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त है। भक्तिकालीन कवियों में तुलसी, कबीर, रहीम, गुरुनानक, रविदास, जायसी आदि जैसे कवियों ने अपनी रचनाओं के जरिए प्रकृति के प्रति प्रेम, रुचि और चिंतन का बोध दिखाया है।

रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति के सौन्दर्य को निरूपित किया है। भूषण, केशवदास, बिहारी, देव, पद्माकर, सेनापति, आलम, घनानन्द आदि कवियों ने प्रकृति के सौंदर्य चित्रण के साथ-साथ प्रकृति के प्रति चिंता का भाव भी प्रकट किया। सूखा और जल संकट को निरूपित करते हुए कवि भूषण लिखते हैं: 'सूखे वन, झरे वृक्ष, नदियाँ नीर विहीन।' भूषण ने तत्कालीन वास्तविक पर्यावरणीय समस्या को बड़े ही सार्थक तरीक़े से उठाया है। आगे चलकर आधुनिक हिन्दी कवियों में श्रीधर पाठक, हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की कविताओं में प्राकृतिक सौंदर्य का चमत्कारी चित्रण हुआ है। कवि श्रीधर पाठक ने 'कश्मीर की सुषमा' कविता में प्रकृति के स्वरूप का बड़ा ही मनोरम दृश्य प्रस्तुत किया है तो वहीं अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध ने 'प्रिय-प्रवास' महाकाव्य में राधारानी की हृदय व्यथा का प्रकृति के उपादानों के माध्यम से हृदयस्पर्शी अभिव्यंजना की है। छायावादी काव्य प्रकृति-पर्यावरण के वर्णन से भरा पड़ा है। इस युग की कविताओं में प्राकृतिक सौंदर्य के साथ-साथ पर्यावरणीय ख़तरे की ओर भी संकेत देखने को मिलता है। जहाँ एक ओर 'प्रकृति' प्रेयसी, सखी, सहचरी और मानवीकरण के रूप में चित्रित हुई है, वहीं दूसरी ओर प्रकृति के भयावह रूप को भी दर्शाया गया है।

हिंदी साहित्य में 'कामायनी' संभवतः पहली रचना है जिसमें प्रकृति और पर्यावरण को विविध नज़रिए से प्रस्तुत किया गया है। 'कामायनी' में प्रसाद ने सृष्टि के विनाश की कथा को बयान किया है। पर्यावरण में होने वाली समस्याओं व असंतुलन पर विचार करते हुए उन बिन्दुओं को रेखांकित किया गया है:
'हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह /
एक पुरुष भीगे नयनों से, देख रहा था प्रलय-प्रवाह।' प्रकृति के विकराल रूप से समस्त मानव जाति का विनाश हो जाता है और अंत में केवल मनु और श्रद्धा का अस्तित्व रहता है। इसके अतिरिक्त महादेवी वर्मा, सुमित्रानन्दन पंत, जयशंकर प्रसाद और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की कविताओं में प्रकृति का सूक्ष्म और उत्कृष्ट रूप देखने को सहजता से मिल जाता है। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला भी 'संध्या' की बेला को एक सुंदरी के रूप में वर्णन करते हुए कहते हैं: 'दिवसावसान का समय मेघमय आसमान से उतर रही है / वह संध्या सुन्दरी परी-सी, धीरे, धीरे, धीरे।'

आधुनिकता के दौर में प्राकृतिक सौन्दर्य और उसके अस्तित्व पर काले बादल मंडराने लगे हैं। नागार्जुन अपनी कविता 'फूले कदंब' के द्वारा कहते हैं:

सावन बीता
बादल का कोप नहीं रीता
जाने कब से वो बरस रहा
ललचाई आँखों से नाहक
जाने कब से तू तरस रहा
मन कहता है छू ले कदंब।

'फूले कदंब' में पर्यावरणीय समस्याओं को उजागर किया गया है जिसमें जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण तथा भूमि प्रदूषण मुख्य रूप से

शामिल हैं, जो भारत की प्रमुख पर्यावरणीय समस्याओं को दर्शाता है। यह इशारा प्राकृतिक संसाधनों का सटीक उपयोग और उनके संरक्षण से जुड़ा है। प्रकृति के प्रति अपनी चिंता व्यक्त करते हुए केदारनाथ सिंह ने पानी के संकट के ऊपर अपनी कविता 'पानी की प्रार्थना' में लिखते हैं:

अन्त में प्रभु
अन्तिम लेकिन सबसे जरूरी बात
वहाँ होंगे मेरे भाई-बन्धु
मंगल ग्रह या चाँद पर
पर यहाँ पृथ्वी पर मैं
यानी आपका मुँह लगा यह पानी
अब दुर्लभ होने के कगार पर तक
पहुँच चुका है।

आज इस संकट के दौर में, हिन्दी कवियों में चिंता की भावना जागृत होना स्वाभाविक भी है जिसे त्रिलोचन, केदारनाथ सिंह, रामदरश मिश्र, अरुण कमल, ज्ञानेंद्रपति, अशोक पजपेयी, लीलाधर मंडलोई, मंगलेश डबराल, वीरेन डंगवाल, शिशुपाल सिंह जैसे कवियों ने अपनी कविताओं में बखूबी दर्शाया है। ज्ञानेंद्रपति ने पर्यावरणीय समस्या को एक जीवंत मुद्दे के रूप में बड़ी संवेदनशीलता के साथ उभारा है। वे गंगा प्रदूषण या पर्यावरण प्रदूषण के दृश्य को दर्शाते हैं:

गंगा मे स्नान कर रही
वह बूढ़ी मैया...
अपने प्राणों तक को प्रक्षालित कर
रही है, पवित्र कर रही है
महाप्रस्थान-प्रस्तुत, डगमग पांवों वाली
वह बूढ़ी मैया
तुम क्या जानों, क्योंकि तुम्हारे लिए नहीं
बची है कोई पवित्र नदी
तुम्हारी सारी नदियाँ अपवित्र हो गई हैं-
विषाक्त
तुम्हारे हत्पिंड की गंगोत्री सूख ही गई है
पीछे और पीछे खिसकती, आख़िरकार।

आधुनिकता के दौर में भूमंडलीकरण, औद्यौगिक क्रांति और बाजारवादी संस्कृति ने जिस रफ़्तार के साथ प्रकृति का दोहन व शोषण किया है; उसका अतीत के कवियों ने अनुमान भी नहीं लगाया होगा। वीरेन डंगवाल की 'बच्चा और गौरैया' कविता में पर्यावरणीय संवेदना को मुखरित करते हुए लिखते हैं:

इस तरह बदहवास
मत टकराओ गौरैया
खिडकी के कांच के शीशे से
तुम्हारी चोंच टूट जाएगी
और नाखून उलट जाएंगे।

लीलाधर मंडलोई के काव्य संसार में पर्यावरण के संवर्धन और संरक्षण की चिंता एक प्रमुख प्रश्न है। आज तमाम संगठन एक तरफ पर्यावरण संरक्षण के लिए अनेक सभाएं व सम्मेलन किए जा रहे हैं वहीं दूसरी ओर बाज़ारवादी नामक गिद्ध पर्यावरण का अंधाधुंध दोहन व शोषण भी कर रहा है। मंडलोई जी अपनी कविता 'आपत्ति' के माध्यम से कहते हैं:

मेरी उम्र सात ही बरस सही
दिमाग न हो दिग्गजों जैसा, मगर हक है
मेरा कहना
अगर रेगिस्तान में बहे लहू का दरिया
अगर समुद्र में मरे अनगिनत जल-जीव
अगर जल उठें पेड़, पौधे, पत्तियाँ
अगर हवा में घुले ज़हर ओर-छोर
और कोई अगर चाहे करना इस धरती
को नेस्तनाबूद
मुझे आपत्ति है,सख्त आपत्ति!

निर्मला पुतुल पृथ्वी के प्रति अपने दुख को व्यक्त करते हुए अपनी 'बूढ़ी पृथ्वी का दुख' शीर्षक कविता में लिखतीं हैं:

थोड़ा सा वक्त चुराकर बतियाया है
कभी
कभी शिकायत न करने वाली
गुमसुम बूढ़ी पृथ्वी से उसका दुख
अगर नहीं तो क्षमा करना।
मुझे तुम्हारे आदमी होने में संदेह है।

इस तरह हम देखते हैं कि समकालीन हिन्दी कविता में पर्यावरणीय चेतना और जागरूकता को बड़ी सजीवता के साथ चित्रित किया है।

व्यंग्य

नेताजी का मर कर जीना!

प्रभात गोस्वामी
व्यंग्यकार, अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट कॉमेंटेटर, पॉडकास्टर
prabhatgoswami59@gmail.com

पार्टी में अपनी घोर उपेक्षा की वजह से निराशा के रसातल में पहुंचे नेताजी को इस बात का कतई विश्वास नहीं हो रहा है; कि एक दिन उन्हें भी उपेक्षा के दिन देखने पड़ेंगे। लेकिन उनको पक्का यकीन है कि राजनीति के आँगन में उनके अच्छे दिन फिर मानसून की तरह जमकर बरसेंगे। उनकी सूनी बगिया में खुशहाली के फूल खिलेंगे। उनकी जय-जयकार से चहुँ दिशाएँ फिर से गुंजायमान होंगी। पर, हाल फ़िलहाल तो उनकी राजनीति की ज़मीन पर मानो किसी गहरे अकाल-सी छाया पड़ गई है। लम्बा समय बीत जाने के बाद भी जब आलाकमान के कानों में जूं तक नहीं रेंगीं। तब नेताजी ने शहर से दूर सुरम्य पहाड़ी के नीचे बने, अपने फार्म हाउस को कैकई की तरह "कोप भवन", में परिवर्तित कर लिया।

अपने पारम्परिक वस्त्रों का त्याग कर नेताजी काले कपड़ों में कड़ा विरोध जताने के लिए उस कोप भवन में जा बैठे। उनके चेलों के लाख जतन करने के बाद भी जब पार्टी आलाकमान अपनी कुम्भकरण-सी गहरी नींद से नहीं जागा, तब मजबूर हो कर नेताजी ने अपने कोप भवन को एकांतवास में चिंतन की निरीह कुटिया नाम देकर, अपने कड़े तेवरों के नटबोल्ट कुछ ढीले कर लिए। यह सन्देश देने के लिए कि आलाकमान से अब भी उनकी निष्ठा पूरी तरह से जुड़ी हुई है। पर, मीडिया से लेकर उनके कार्यकर्ताओं के असहयोग आन्दोलन की वजह से ये सन्देश फार्म हाउस की चौखट तक भी नहीं पहुँच पाया। राजनीति के आंगन में ये दुर्दिन उनकी आँखों से नींद उड़ा चुके थे। नेताजी के चेहरे की चमक भी किसी गरीब की कुटिया में टिमटिमाते बल्ब की मानिंद कम होती जा रही थी। शरीर किसी पुराने मकान की तरह ज़र्जर होने लगा था। मीडिया के मित्रों ने भी पार्टी की तरह से ही उनका मोबाइल और लैंड लाइन फोन नंबर भी फोनबुक से डिलीट कर दिया था। सबसे नजदीक रहनेवाले कार्यकर्त्ताओं और उनकी नाक के बाल बने हुए घर के भीतरिये भी उनसे किनारा कर चुके थे। उनका तन किसी वैरागी-सा दिखने लगा था। लेकिन, मन अभी भी किसी बेरोजगार युवक की तरह परमानेंट जॉब पाने के सपने के पूरा होने का इंतजार कर रहा था। घोर निराशा के इस दौर में भी उनको कविवर सोहनलाल द्विवेदी जी की यह कविता रह-रह कर जोश दिला रही है, "कोशिश करने वाले की कभी हार नहीं होती"। गोया, नेताजी इतनी जल्दी हार मानने को तैयार भी तो नहीं है।

पूरे दिन और देर रात तक नेताजी पुराने फोटो एलबम, समाचारों की कतरनें और पुराने विडियो क्लिप्स देखते रहते थे। अपने क्षेत्र में किए गए शिलान्यासों और उद्घाटनों की यादें उन्हें कितना सुकून देतीं हैं। पर, जब वे यथार्थ के धरातल पर आते हैं, तब मन निराशा के किसी गहरे समंदर में डूबने लगता है। उनको हमेशा यह भी लगता था कि राजनीति के आकाश में उनका सूरज कभी अस्त हो ही नहीं सकता!! जब–जब नेताजी यह सोचते तब-तब उनके कानों में उन दिनों के जय घोष गूंजते थे – "जब तक सूरज-चाँद रहेगा, नेताजी का नाम रहेगा!!" और, फिर नेताजी की आत्मा किसी यायावर के मानिंद गलियों, चौराहों, मंदिरों, मस्जिदों,

गिरिजाघरों से गुरुद्वारों के गलियारों में भटकने लगती। आखिर जब हर वर्ग को साथ लेकर उन्होंने सदैव राजनीति की शुचिता का पालन किया; तो कहाँ उनसे चूक हो गई? यह सवाल रह-रह कर उनको चुभता रहता है। राजनीति मुई चीज़ ही ऐसी होती है। यहाँ उम्मीद का दीया तेल खत्म होने के बाद भी जलता हुआ ही प्रतीत होता है। यही ज्योति हर नेता के मन के अँधेरे को रोशन करती रहती है।

दिन बीते, माह बीते और साल भी बीत गया। नेताजी के फार्म हाउस से बसंत भी परमानेंटली विदा हो गया। पतझड़ ने स्थाई डेरा जमा लिया। अब वहां मरघट-सा सन्नाटा पसरा हुआ था। उम्मीद की आखिरी किरण टूटने के बाद नेताजी ने दूधवाले,सफाई करने वाली बाई, नौकर-चाकरों को भी छुट्टी दे दी थी। अकेले में पता नहीं उनका क्या हाल है? इसकी जानकारी किसी को भी नहीं है।

एक दिन, देर रात मीडिया में ये खबर वायरल हो गई (या करवाई गई) कि नेताजी नहीं रहे। एकांतवास ने उनकी जान ले ली! उन्होंने देर रात अपने फार्म हाउस में अंतिम सांस ली। वो अपने पीछे कोई परिवार भी छोड़ कर नहीं गए। जनसेवा के संकल्प के चलते उन्होंने शादी जो नहीं की थी। वैसे नेताजी अक्सर कहते भी थे कि उनकी जनता, उनके मतदाता ही उनका परिवार है। वे जब भी इस दुनिया से रुखसत होंगे, तब तीस लाख (शहर की आबादी) लोगों के विशाल परिवार को छोड़कर जाएँगे। जंगल की आग की तरह यह खबर सारे शहर और राज्य में फ़ैल गई। अगले दिन शहर के सारे अखबारों ने यह खबर मुखपृष्ठ पर छाप दी। पार्टी के बड़े पदाधिकारियों से लेकर छोटे कार्यकर्ताओं तक, मुख्यमंत्री, मंत्रिगण सभी ने देर रात शोक भी प्रकट कर दिया था।

स्थानीय टीवी चैनलों ने सुबह ब्रेकिंग न्यूज़ के साथ फुल स्क्रीन समाचार देने शुरू कर दिए। देर रात को जब सारे लोग सोए हुए थे, तब यह न्यूज़ चलाने से कोई मतलब भी नहीं था। लोग जब उठते हैं तभी टीवी की टीआरपी उठती है। सो अल सुबह से टीवी पर भी नेताजी के जन्म से लेकर लम्बे राजनीतिक सफ़र की जानकारी दी जाने लगी। अख़बार भी इसी खबर से भर गए।

उनके चेले भी अचानक हृदय परिवर्तन कर रोते-बिलखते दिखाई दिए। अल सुबह नेताजी के फार्म हाउस के आगे मानों शहर सिमट गया हो। हर रास्ता अचानक नेताजी के फार्म हाउस की ओर जाने लगा। कुछ दूर-दराज़ के रिश्तेदार भी अचानक प्रकट हो गए। फार्म-हाउस के आगे लोगों का शोर। कार्यकर्ताओं का फिर वही जयघोष – "जब तक सूरज-चाँद रहेगा, नेताजी का नाम रहेगा। नेताजी अमर रहे।" मीडिया के लोग भी पहुँच गए। टीवी चैनलों की छतरी लगी गाड़ियों से घर के माहौल की हर ब्रेकिंग न्यूज़ देने की होड़ लग गई। प्रशासन व पुलिस का अमला भी कानून-व्यवस्था के संधारण के लिए आ गया। नेताजी के अंतिम संस्कार की चर्चा के बीच सहसा ऐसा क्या देख लिया कि हज़ारों लोग दांतों तले अंगुली दबाने को मजबूर हो गए? सबकी आँखें विस्मय से रावण पुत्र मेघनाद की तरह से फटी की फटी रह गईं!! "अरे ये क्या हुआ?" लोगों का शोर, कार्यकर्ताओं का रुदन सुनकर, नेताजी अचानक अपनी बालकोनी में प्रकट हो गए।

उनको यकीन ही नहीं हो रहा था कि बैसाख की प्यासी सुबह में मानसून कैसे आ गया? ये भीड़ और ये शोर कैसा है? अपनी आँखें मलते हुए नेताजी ने झटपट अपनी पारम्परिक ड्रेस पहनी और फार्म हाउस के मुख्य द्वार पर आ गए। अचानक किसी बरसात सरीखे मीडिया के लोग उन पर घनघोर घटाओं की तरह बरस पड़े। प्रश्नों के शोर में नेताजी आश्चर्य मिश्रित ख़ुशी से बोलने लगे, "अरे शांत हो जाइये। आखिर हुआ क्या है?" तभी एक पत्रकार ने सवाल उछाला, "नेताजी आप तो मर चुके थे? आधी रात ये खबर वायरल हुई थी। फिर ये कैसा चमत्कार हो गया, आप फिर से जी उठे?"

नेताजी अपने पुराने तेवरों में लौट आए। उनको लगा कि अगर इस खबर का खंडन करूँगा तो मेरा मुंडन हो जाएगा, फिर से आइसोलेशन में जाना पड़ेगा। और, अखबार भी

इसका खंडन चौबीसवें पेज के कोने में किसी ग़रीब की अर्जी की तरह से कहीं अटका देंगे। सो, कोई अकाट्य तर्क के साथ ज़वाब देना होगा। नेताजी ने बड़ी चतुराई के साथ ज़वाब देना शुरू किया। उन्होंने बताया, "मित्रो, मुझे नहीं पता ये खबर कब और कैसे वायरल हुई? हाँ, वैसे यह भी सच है कि आपके नेताजी मर गए थे! कोई भी नेता अपनी पार्टी, कार्यकर्ताओं, अपनी जनता से दूर जा कर कैसे जी सकता है?"

नेताजी अब अति भावुक हो कर बोले, "मेरे विरोधियों ने षड्यंत्रपूर्वक, असमय मेरी राजनीतिक हत्या कर दी। मेरे अपने कार्यकर्त्ता, खास चेले मुझे छोड़कर चले गए। एक साल से किसी अखबार में मेरी खबर नहीं छपी, टीवी में पट्टी चली न खबर।

लोगों ने मेरा ज़िक्र तक करना बंद कर दिया। यहाँ तक कि तीये की बैठकों में मेरे द्वारा भेजे गए शोक सन्देश भी रद्दी की टोकरी में डाले जाने लगे। अब आप ही बताइए क्या कोई नेता ऐसे हालात में जी सकता है? हाँ, यह सच है कि आपके नेता जी मर गए।" तभी चुटकी लेते हुए एक पत्रकार ने आश्चर्य से पूछा, "तो क्या हम इस वक़्त नेताजी के भूत से बात कर रहे हैं?"

नेताजी बड़े शांत हो कर बोले," अभी आपसे झटका प्रसाद धरतीपकड़ मुखातिब हो रहा है। एक आम आदमी। कुर्सी से उतरते ही नेता आम आदमी हो जाता है। नेताजी धरतीपकड़ तो सच में मर चुका है। उसकी आत्मा तो नामचीन व्यंग्यकार स्व। हरिशंकर परसाई के 'भोला राम के जीव', की तरह आलाकमान के दफ्तर की फाइलों में भटक रही है। तभी एक टीवी चैनल का रिपोर्टर बरसात की आखिरी बूंद की तरह टपकता है, "नेताजी, बधाई हो! आज यह भीड़, कार्यकर्ताओं का जोश और मीडिया की व्यापक कवरेज को देखकर क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि नेताजी मर कर फिर जी उठे हैं?"

नेताजी (गदगद हो कर), "मित्रो, मीडिया ने आज मेरी (राजनीतिक) मृत्यु को कवरेज की संजीवनी से पुनः जीवित कर दिया है। इसके लिए मैं आपका हृदय की गहराइयों से आभार प्रकट करता हूँ। जैसे ये कहावत है कि 'जंगल में मोर नाचा, किसने देखा ? ठीक उसी तरह राजनीति के गलियारों में भी कहावत है कि "कुर्सी और मीडिया से लुप्त नेता किसने देखा?"

आइये, मैं आपके माध्यम से मेरे प्यारे भाइयो और बहनो को यह जानकारी देना चाहूँगा कि आपके प्रिय नेताजी मर कर फिर जी उठे हैं।" अचानक नेताजी के कार्यकर्त्ता एक बार फिर नेताजी के जयघोष से असमान गुंजायमान कर देते हैं, "जब तक सूरज-चाँद रहेगा, नेताजी का नाम रहेगा!! नेताजी अमर रहें। नेताजी अमर रहें," और सैकड़ों हाथों में फूल मालाएँ जो नेताजी के शव पर चढाने के लिए लाईं गईं थी, नेताजी के गले में डालने की होड़-सी लग गईं। अपने नव जीवन की इस मधुर वेला में, नेताजी के चेहरे पर फिर से त्योहार जैसी रौनक तैरने लगी। गाल सुर्ख गुलाब से चमकने लगे।

राजनीति में मर कर जीने का भी मज़ा ही अलग होता है!

पुस्तक समीक्षा

नीम का शहद

राजवर्धन आज़ाद का काव्य संग्रह

नागेश चन्द्र मिश्र

अवकाश प्राप्त चीफ इन्जीनियर, बिहार सरकार, समीक्षक
rajvardhan.azad@gmail.com

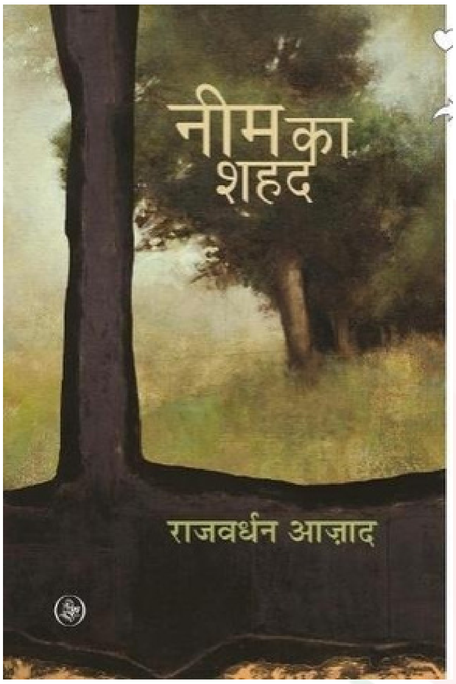

इस संग्रह को देखते ही मेरे मन में जिज्ञासा उठी कि डॉ. राजवर्धन आज़ाद ने अपने इस खूबसूरत काव्य-संग्रह का शीर्षक 'नीम का शहद' ही क्यों चुना? क्या इसलिए कि विश्व रूप दर्शन कराने के लिए श्रीमद्भागवत गीता के ग्यारहवें अध्याय में वर्णित "पश्य मे पार्थ रूपाणि" की दिव्य दृष्टि चाहिए जो भगवत्कृपा के बिना संभव नहीं; अत: उस शक्ति-पुंज के सौम्य दर्शन हेतु, क्वरैनटाइन औषधीय गुणों से परिपूर्ण संग्रह एक प्रयोगात्मक प्रतीक के रूप में सहजता प्रदान कर सके? जैसा कि डॉ. आज़ाद ने अपनी कविता 'दिव्य पंचामृत' में लिखा है:

छोटी कविता / बड़े भाव / कम होता / रख-रखाव
कम शब्द / छोटी पंक्ति / सजी संवरी / दुल्हन लगती
कर्ण श्रव्य / मीठा द्रव्य / ज्यों बूंद अमृत /दिव्य पंचामृत।

पेशे से नेत्र-विशेषज्ञ, डॉ. राजवर्धन आज़ाद का यह नया काव्य-संग्रह नीम और शहद के गुणों से परिपूर्ण है, जिसमें उन्होंने मानवीय संवेदनाओं - अपनी अकुलाहट और छटपटाहट - को कम-से-कम शब्दों में कहने का प्रयास किया है। किसी एक कविता में औसतन 50 शब्द ही पूरे पेज पर दिखेंगे पर वे 'गागर में सागर' की तरह लगेंगे। सभी कविताएँ स्वत:स्फूर्त हैं; 'देखन में छोटन' भले लगें पर 'गंभीर घाव' नहीं देतीं बल्कि अंधेरे से वास्तविकता की ओर ले जाती हैं, जैसे ज्योति को तरसते मरीज़ को आँखें पर बँधी पट्टी के खुलते ही अचानक रोशनी दिख जाए और उसके चेहरे पर उल्लास की ख़ुशी दमक उठे! रचना काल 2021-22 (कोरोना-काल) की दर्दभरी का एहसास भी ताज़ा कर जाता है। रोज़मर्रा ज़िंदगी के ऐसे 'डिफाइनिंग मोमेंट्स' को बिना किसी आयास के कम से कम शब्दों में गढ़ने की अद्भुत क्षमता है रचनाकार में - उनमें यह नैसर्गिक गुण ईश्वर प्रदत्त है, जिसे वह 'मौन की अभिव्यक्ति' के रूप में देखते हैं - यही तो असली साधना और इबादत है।

'कर्टेन रेज़र' के बतौर 'नीम का शहद' संग्रह से मात्र एक कविता का अंश साझा कर रहा हूँ, जिसे 'सप्तक' की तरह पढ़कर शेष दो सौ तैंतीस कविताओं का रसास्वादन करने की उत्कंठा आपमें बनी रहे; मैं समझता हूँ, इससे बेहतर आज के परिदृश्य का चित्रण नहीं हो सकता:
बीमार है मुल्क / बीमार हैं कुर्सियां / बीमार हकीम से / हम दवा पूछ रहे हैं।

साक्षात्कार

स्त्री, स्त्री होने के सिवा मनुष्य भी तो है।

अनामिका से रेखा सेठी की अंतरंग बातचीत (अंतिम भाग)

प्रो. रेखा सेठी

दिल्ली विश्वविद्यालय के इंद्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय में प्रोफ़ेसर, लेखक, समीक्षक, अनुवादक और 'वातायन' की स्मृति संवाद श्रृंखला की समन्वयक हैं

reksethi@gmail.com

समकालीन हिंदी साहित्य में अनामिका ने जो अपनी जगह बनाई, उसकी आधारभूमि स्त्रीवादी लेखन से निर्मित है। स्त्री चिन्तन और लेखन की भारतीय तथा वैश्विक परम्पराओं का अवगाहन कर, वे बहनापे के नए-नए संबंध स्थापित करती रही हैं। व्यापक मानवीय सहानुभूति से जुड़ी होकर भी उनकी रचनाएँ एक ख़ास स्त्रीवादी मुहावरे में लिपटी रही हैं। 'स्त्रियाँ', 'दरवाज़ा', 'बेजगह' जैसी कविताएँ स्त्री-विमर्श की युगीन साहित्यिक अभिरुचि के अनुकूल थीं। विचारधारा के स्तर पर 'स्त्रीत्व का मानचित्र' लिखकर वे अपनी साहित्य-दृष्टि की उद्घोषणा पहले ही कर चुकी थीं। इस पृष्ठभूमि में स्त्री-कविता के अर्थ-आशय समझने के लिए प्रस्तुत है, रेखा सेठी से उनकी लम्बी बातचीत...

रेखा सेठी: क्या आपको कभी लगा कि 'स्त्री-विमर्श' स्त्री-कविता की संभावनाएं तलाशने की अपेक्षा उसके लिए एक सीमा बन गया क्योंकि यह जिस कविता को एक विशेष दृष्टिबोध से देखने का आग्रह करता है उससे कविता के अन्य पक्ष चर्चा के केंद्र में आ ही नहीं पाते?

अनामिका: विमर्श बस एक खिड़की है, एक प्रयाणबिंदु। दिखाती वह समूचा फलक ही है, किन्तु एक कोण से। जैसे कमरे का एक कोण होता है, वैसे ही स्त्री-कविता का भी एक कोण विमर्श है, पर तस्वीर जब खिंचकर आती है तो वृहत्तर यथार्थ के कई कोण सामने आते हैं। कोई दर्पण या कोई तस्वीर किसी एक शै पर केन्द्रित हो, यह तो सम्भव है पर वह दर्पण या तस्वीर, उसकी पृष्ठभूमि से बिलकुल बेखबर हो, यह कहीं से भी संभव नहीं।

एक संकेत की तरह पृष्ठभूमि पकड़ में ही आ जाती है और फिर बहुत-कुछ जाना जा सकता है उसके परिवेश के विषय में, काल-स्थान और उससे जुड़ी बृहत्तर सच्चाइयों के बारे में। स्त्री-कविता अक्सर एक टेलीस्कोप की तरह शुरू तो होती है बड़े फलक से, फिर अपना वृत्त सिकोड़ती हुई अतंतः आकर टिक जाती है दो लोगों के बीच की अंतरंग बातचीत पर, या किसी विषय पर या ऐसे एकालाप पर जिसमें बृहत्तर परिवेश से सम्बद्ध कई विडम्बनाएँ उत्कीर्ण होती हैं, सिर्फ स्त्री-जीवन से जुड़ी विडम्बनाएँ नहीं। स्त्री-नागरिकता और स्त्री-फैंटेसी से जुड़े कई रंग स्त्री-कविता के फलक पर हैं - युद्ध, दंगा, बँटवारा, विस्थापन, बाज़ार, पर्यावरण – 'वो कौन-सी महफिल है जहाँ तू नहीं मौजूद (स्त्री- कविता)?'

रेखा सेठी: आपने लिखा है, 'खुरदरी सतहें मुझे हमेशा आकर्षित करती हैं' इस सन्दर्भ में अपने काव्य की मूल प्रेरणा के विषय में बताइए?

अनामिका: खुरदरी सतहें हाथ बढ़ाकर रास्ता रोकती हुई-सी जान पड़ती हैं, कुछ इस तरह जैसे रवि बाबू की कविता में परदेसी पिता को रोकती हुई नन्हीं बेटी - 'जेते आमी देबो न तोमार'। तरह–तरह के आरोहों–अवरोहों से भरी हुई सतहें

जीवन का गम्भीर ध्रुपद

आरोहों–अवरोहों से भरी हुई सतहें जीवन का गम्भीर ध्रुपद गायन हैं। तरह-तरह की उठा–पटक, ऊँच–नीच जिसने अपनी छाती पर झेली हो - उन सतहों का अंत:स्थल ज्यादा अगाध होता है - उसके अंतरालों में बरसात का पानी झिलमिलाता है, पानी में नन्ही मछलियाँ उजबुझाती हैं और कभी चाँद–सूरज भी अस्ताचल की अन्तिम किरणें उन्हें सौंप आते हैं।

मुझमें कविता का स्पन्दन वे ही लोग करते रहे हैं जो नारियल की तरह ऊपर से खुरदरे, भीतर स्वच्छ नरम पानी हो। उनकी अन्तर्भूत शर्मीली नरमाई उद्घाटित करना मुझे अपने जीवन की सबसे सुखद चुनौती लगता है। 'प्रतीति' और 'यथार्थ' के बीच ही दुनिया की सारी विडम्बनाएँ बैठी है, और स्थितिगत, चरित्रगत, भाषागत या भावगत विडम्बनाओं की गिरह खोलते हुए जीवन कुछ सार्थक कर गुज़रने के तोष से भर जाता है। इस विस्तृत जगत से कुछ चुनिन्दा क्षण चुनकर उनका एक प्रतिसंसार रचना जो एक कौंध में जीवन की विडम्बनाएँ उद्घाटित कर दे, मुझे हमेशा से प्रीतिकर लगता रहा है। अगर हम सारी कुंठाएँ और पूर्वग्रह ताक पर रख किसी से बातचीत करते हैं तो दो लोगों के बीच आत्मीयता की जो धारा बहती है, जीवन का मर्म उद्घाटित करने वाले क्षण उसी में दमकते हैं।

रेखा सेठी: क्या कोई रचनाकार कभी आपके रोल मॉडल हुए जिनको पढ़कर आपको ऐसा लगा कि मैं ऐसी कविताएँ लिखूँ?

अनामिका: शुरू में मुझे एमिली डिकेन्सन बहुत प्रिय थीं, बाद में सिल्विया प्लाथ अच्छी लगने लगीं। मेरे पिताजी मुझे बहुत-सी किताबें लाकर देते थे, उस समय उन कविताओं को पढ़ने से एक नए तरह का स्वाद जगा। सिल्विया प्लाथ की एक कविता है 'डैडी', पिताजी ने कहा कि 'देखो पिता पर उसने कैसी कविता लिखी है', मुझे लगा कि जैसे एक नया संसार उभरा है। ट्रेडिशनल पोएट्री से तो मेरा संवाद बन ही चुका था लेकिन सिल्विया प्लाथ की ये कविताएँ पढ़कर एक बिलकुल ही नया परिदृश्य मेरे सामने खुला जो मुझे अच्छा लगा।

रेखा सेठी: केदारनाथ सिंह ने आपकी कविताओं का मूल्यांकन करते हुए उनमें एक ख़ास बात लक्षित की है कि आपकी कविता में एक नया सौन्दर्य-बोध और क्रीड़ा-वृत्ति है? आपकी कविता के मूल्यांकन का यह बहुत सार्थक निकष है जिस पर हिंदी आलोचना ने गौर नहीं किया अधिकांशतः तो आपकी कविताओं में स्त्री सवाल ही ज्यादा तलाशे गए हैं।

अनामिका: जी, बिलकुल सही कहा आपने। केदार जी के बाद मदान कश्यप ने एक लेख लिखा था हालांकि उसमें भी उन्होंने स्त्री-दृष्टि को ही परखने की कोशिश की थी लेकिन फिर भी उसमें छोटे शहर के सौन्दर्य-बोध को लक्षित किया गया था। जब भी व्यक्ति छोटे शहर से बड़ी दुनिया में आता है तो उसके सामने दुनिया कैसे खुलती है, आप उसे फिर एक साँचे में बाँधकर फिर नहीं देख सकते। उस दुनिया को वृह्त्तर सौदर्य-बोध और नैतिक चेतना के आधार पर ही देखना होता है।

रेखा सेठी: आपकी कविताओं में परंपरा का प्रक्षेपण कुछ इस रूप में हुआ है जो स्त्री को स्वीकार और अस्वीकार के बीच की ज़मीन पर अवस्थित करता है...

अनामिका: स्थितियों की आयरनी अक्सर दिखती नहीं है लेकिन सिचुएशनल आयरनी हो या करैक्टर की आयरनी मेरी आँख से ऐसी कोई भी बात छूटती नहीं है। मैं मज़े से उसका लुत्फ़ लेती हूँ। मुझे अच्छा लगेगा यदि कोई मेरा ह्यूमर ट्रेस करे, मैं मज़े-मज़े से जीवन की विडम्बनाओं से कैसे भिड़ंत करती हूँ अगर यह कोई पकड़े तो मुझे बहुत अच्छा लगेगा लेकिन किसी ने अभी तक यह सोचा नहीं।

रेखा सेठी: यह भी तो एक तरह की आयरनी ही है कि हमारे समय के अस्मिता-मूलक विमर्श कंटेंट और फॉर्म का रेजीमेंटेशन कर रहे हैं। स्त्री-विमर्श की कविताएँ हों या दलित-विमर्श की सबके मुद्दे एक से होने लगे हैं।

अनामिका: मुझे लगता है कि कविता को भाषणबाज़ी या नारेबाज़ी से तो बचना ही चाहिए। बातचीत के टुकड़े परिवेश में उड़ते ही हैं, उस सबको समेटकर ही कविता का अंतरंग संसार बन सकता है। कविता एक अंतरंग भाषा क्रिएट करती है और वह लम्बी-चौड़ी भाषा अगर ह्यूमर को साथ ले ले तो उसका असर ज्यादा होगा। कोई चीख रहा है, कोई प्रश्न उठा रहा है, इससे आदमी चेतता तो है लेकिन उससे कुछ ग्रहण नहीं होता। विमर्शों की दुनिया एक तरह का मनोवैज्ञानिक युद्ध है। स्त्री-पुरुष के बीच, जातियों के बीच या काले-गोरे के बीच लगातार एक मनोवैज्ञानिक युद्ध चल रहा है। ख़ास कर स्त्रियों का जो संघर्ष है वह और भी जटिल है क्योंकि उसमें प्रेम भी है। इसीलिए फॉर्म की जो बात आपने की वह बहुत महत्वपूर्ण है। हमें यह देखना पड़ता है कि अपनी बात कैसे कही जाए।

आप उन्हीं पुरुषों को बदलना चाहते हैं जिन्हें स्त्री ने ही पैदा किया है। पारंपरिक कविता में जो कांता-सम्मित उपदेश रहा उसे ही नया रूप देना है। कुछ ह्यूमर, कुछ अंतरंगता से बातचीत का फॉर्म देना है। स्त्री और पुरुष के बीच भेड़-भेड़िये वाला नाता तो नहीं हो सकता न। जहाँ होता है वहाँ अपराध होते हैं। स्त्री संबंधी अपराध या हिंसा तभी होती है जब भेड़-भेड़िये वाला सम्बन्ध बनता है और उसमें स्त्री देह सबसे अधिक शिकार होती है। मैं सभी पुरुषों की बात नहीं कर रही हूँ, बहुत-से सखा और हमदर्द बनकर भी जीते हैं। उनका स्त्रियों के प्रति एक जेन्युइन कॉनशियसनेस होता है लेकिन जहाँ ऐसा विश्वास नहीं है, वहाँ कविता और विमर्श बहुत कारगर हो सकते हैं। विमर्श सतर्कता पैदा करता है और कविता, भाषा के स्तर पर बहुत ही महीन ढंग से बात करने का नाम है। कविता की भाषा में एक बांकपन, एक तंज़ होना चाहिए। यह फॉर्म के लिए ज़रूरी है।

रेखा सेठी: इन विमर्शों से शिकायत यह भी रही है कि ये विमर्श आयातित हैं, हमारी मिट्टी से नहीं उपजे। इनकी जो सैद्धांतिकी है, वह भी हमारी सैद्धांतिकी नहीं है। आपने भी जब 'स्त्रीत्व का मानचित्र' लिखी तो उसमें भी जो सैद्धांतिकी का पक्ष उभरा उसमें उस तरह की आयातित शब्दावली बहुत है। आपको क्या लगता है?

अनामिका: हवाएँ तो चारों दिशाओं से चलती और बहती हैं और हवाओं को आप रोक नहीं सकते। एक ही दिशा से पुरबिया भी बहती है, पछिया भी बहती है, इसी तरह के संवाद की ज़रूरत है। अखंड धरती का मानचित्र बना लेने से धरती किसी की हो जाती हो ऐसा नहीं है, हमें इतनी छुआछूत नहीं करनी चाहिए। हमें ऐसे संसार की परिकल्पना करनी चाहिए जिसमें घेरेबंदियाँ कम से कम हों और हमारी समस्याएँ सुलझ जाएँ। मार्क्स ने एक सिद्धांत दिया तो लेनिन ने उसे अपने देश, अपनी परिस्थितियों के अनुसार एडेप्ट किया, माओ ने अपने ढंग से। कोई भी दर्शन पूरे विश्व के लिए ग्राह्य होता है। जो चाहे अपनी तरह अपनी स्थितियों के अनुसार उसे ग्रहण कर ले। हमारे यहाँ भी स्त्री चेतना का विकास ना हुआ हो ऐसा नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी में स्त्री शिक्षा के प्रचार के साथ बहुत-से परिवर्तन हुए और अब भी जो हवाएँ जहाँ से आ रही हैं उन्हें ग्रहण कर अपनी परम्पराओं से जोड़कर आगे बढ़ना एक चैलेंज है। एक छलनी की तरह, आपने जो भी पढ़ा वह उस छलनी से छनकर आपके परिवेश, आपकी परम्पराओं से जुड़ जाएगा।

मुझे लगता है कि अपने को टटोलने की, अपने वजूद को टटोलने की चेतना भी उसी समय आती है, जब हम बाहर देखते हैं। बाहर देखने के बाद, भीतर देखने की इच्छा और प्रबल हो जाती है। उन्नीसवीं शताब्दी में जो भी आविष्कार हुआ, जो भी खोज हुई उसमें सबसे बड़ी खोज यही थी कि अपने वजूद के प्रति व्यक्ति का आदर बढ़ा। अपने वजूद की जातीय स्मृतियाँ स्त्री कविताओं में सबसे ज्यादा मिलेंगी। जातीय स्मृतियाँ, वैयक्तिक स्मृतियों से मिलजुलकर चलती हैं इसलिए जो है वह आयातित कहीं भी नहीं है। स्त्री कविता तो चेतना का उजास है।

रेखा सेठी: आपने स्त्री-भाषा की बहुत बात की है, यह एक सकारात्मक दिशा है या फिर स्त्री-

कविता की सीमा कि वह अपने मुहावरे को तोड़ नहीं पाती?

अनामिका: स्त्री-भाषा एक ठहाके में सारे तट तोडकर आगे बढ़ जाती परम खिलवाड़ी भाषा है और खेल का मतलब ही है टूट-फूट, चारदीवारियाँ फलाँगकर नए वितानों में भटककर अपने प्रश्नों के उत्तर टटोलने का दमखम।

जब कोई विमर्श लोकप्रिय होता है, तो दो तरह की प्रतिक्रियाएँ होती हैं - कुछ लोग इसकी सेकण्ड हैण्ड अनुकृति (लोकल ब्राण्ड) बनाते हैं (इसे ही मार्क्स ने वल्ग्राइज़ेशन कहा था, लोकप्रियता में यह सहायक ही होता है) और कुछ लोग मुँह चिढ़ाकर इसकी मदद करते हैं (जैसे कोयल की कूक या बच्चे)। इन्हीं अनुकृतियों और विकृतियों का वितान यह भ्रम पैदा करता है कि रूढ़ मुहावरों में कैद हो गया विमर्श।

कल्पना को नवोन्मेषशालिनी कहते ही इसलिए हैं कि वह आधारभूत तत्वों को नित-निए रूप पहनाकर सामने रखती जाती है। रचना का कथ्य तो किसी-न-किसी दर्शन या विमर्श से प्रेरित होता है, उसका अपना होता है उसका शिल्प और इस शिल्प का नियामक होती है व्यक्ति की अपनी भाषा जो उसके फिंगर-प्रिंट की तरह उसकी खास अपनी होती है – अगर लेखक महत्वपूर्ण हुआ तो उसका नाम हटा भी दें तो रचना पढ़कर कोई पहचान लेगा कि यह किसकी है - इसी भाषा के दम पर। महत्वपूर्ण लेखक की हर किताब खुद उसी का पुराना शिल्प तोड़कर आगे बढ़ने का स्वप्न रचती है।

रेखा सेठी: समकालीन कविता की परंपरा में, अपने युग के अन्य कवियों की तुलना में स्त्री रचनाकारों की कविता का मूल्यांकन आप कैसे करेंगी?

अनामिका: जीवन में कई क्षण ऐसे आते हैं जब व्यक्ति अपनी शाश्वत, एकाश्म कॉस्मिक छवि से सन्नद्ध हो जाता है। प्रेम, पढ़ाई-लिखाई, कला-साधना, योग-ध्यान आदि किसी भी तीव्र, सांद्र, सच्ची अनुभूति का क्षण ऐसा होता है कि वह अपनी ही निहित सम्भावनाओं के उस ब्लूप्रिंट से उर्जा ग्रहण करता हुआ निर्विकार हो जाता है क्योंकि वह ब्लूप्रिंट, वह आदर्श स्थिति खुद निर्विकार होती है, उसका न कोई देश होता है, न काल, न जात, न पात, न लिंग, न वर्ग - किसी भी सामाजिक निर्मिति में उसको बाँधा नहीं जा सकता। ...उस क्षण तो क्या स्त्री, क्या पुरूष, क्या सवर्ण, क्या अवर्ण, क्या राजा, क्या रंक। पर ऐसे क्षण अत्यंत विरल होते हैं जब आदमी का वजूद सारे सामाजिक प्रबंधों से टूटकर बिल्कुल परम हो जाए। ज्यादातर तो ऐसा होता है कि एक पाँव परम की ओर उठा हुआ, दूसरा कीचड़ में धँसा हुआ। अब पाँव कीचड़ में है तो है। वजूद शरीर में कीलित है तो है। वह एक दत्त प्रमेय है। पर उससे निकलने की कोशिश तो करनी ही होती है, और खासकर आगे आनी वाली पीढ़ियों के लिए मार्ग निष्कंटक और कीच-विहीन रखने का संकल्प तो रखना ही होता है।

जो जहाँ है, कैद है अपने होने में। अपने वर्ग में, अपनी जात में, नस्ल में, लिंग में - इसकी घेरेबंदियों से निकलना एक आदर्श स्थिति है, पर निकलने की प्रक्रिया में जो बाधाएँ, पूर्वग्रह राह बाधित करते हैं - उसका खाका खींचना हर उस व्यक्ति का धर्म है जो बोल-लिख सकता है। इस खाके से जुड़े अनुभव एक कौंध में पीछे आने वालों के मददगार होंगे। यही सोचकर स्त्री-कवि और अन्य कवि अपने-अपने वर्ग-वर्ण-नस्ल-लिंग के लेंस से साझा यथार्थ परखते और दर्ज करते हैं।

रेखा सेठी: क्या आपको लगता है कि हिंदी आलोचना ने स्त्री-रचनाकारों को साहित्य की मुख्यधारा में उचित स्थान नहीं दिया?

अनामिका: देखिए, आप जिस कुर्सी पर आराम से बैठी हैं, कल वह कुर्सी कुनमुनाए कि आपका वज़न सहा नहीं जाता, ज़रा उठिए, दम घुट रहा है, हम बाहर से टहलकर आती हैं तो आपको कैसा लगेगा। ऐसा ही संपन्न सवर्णों, खासकर पुरुषों को लगा जब दबी-कुची अस्मिताओं ने स्वयं में भी जान-प्राण होने का उद्घोष अपनी रचनाओं में किया।

ज़्यादातर लोग इससे चिढ़े, पर कुछ ने

शर्मिंदा होकर नए ढंग से इनको देखना शुरू किया। हमारे अपने हिंदी प्रदेश में भी सुधीश पचौरी, अभयकुमार दुबे, मदन कश्यप, प्रियदर्शन आदि कुछ उत्कृष्ट चिंतकों ने भी सहज ही हमदर्द निगाह विकसित कर ली, नई पीढ़ी के पुरुषों ने तो स्त्री-विमर्श की प्राणवान रचनाएँ भी दीं। मैं इन्हें स्त्रीवाद के गर्भ से जन्मे नवल पुरुष कहती हूँ। पर 'खग जाने खग ही की भाषा' के तर्क से स्त्री-आलोचना का जो नया स्तर उभरा - उसकी बात कुछ अलग थी: अर्चना वर्मा, रोहिणी अग्रवाल, गरिमा श्रीवास्तव, सुधा सिंह, अल्पना मिश्र, पूनम सिंह, सुनीता सृष्टि, रश्मि रावत, विनीता सहाय, संध्या सिंह और आप - स्त्री-शरीर में पैदा होने के साझा अनुभव से गुज़रकर रचनागत विडम्बनाएँ जब उजागर करती हैं तो स्त्री-भाषा का एक नया तेवर सामने आता है जिसमें हृदय-सम्बलित बौद्धिकता कलकल छलछल बहती सुनाई पड़ती है।

रेखा सेठी: एक कवि की हैसियत से आपकी क्या इच्छा होगी कि आपकी कविताओं को कैसे याद किया जाए, किसी अस्मिता से जोड़कर या फिर विशुद्ध साहित्यिक रचना के रूप में?

अनामिका: रामेश्वर का पुल जब बन रहा था, एक नन्ही गिलहरी भी मूंछों पर तिनका उठाए इधर-उधर दौड़ रही थी। चाहती हूँ कि इसी गिलहरी की तरह मुझे याद किया जाए - आज जब सारे ध्रुवान्तों के बीच एक रोशनी का पुल-सा बनाने का संकल्प कला साहित्य की दुनिया में उठ खड़ा हुआ है - इसके गारे-सीमेंट में कुछ तिनकों का योगदान मेरा भी।

आदर्श स्थिति तो यह होगी कि गिलहरी भूल जाए कि वह गिलहरी है और एक विराट आत्मन से भी अपनी सहज संलग्नता याद रह जाए, पर जब तक भेद-भाव, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े की संरचनाएँ कायम हैं, तब तक भूलना चाहे भी तो गिलहरी भूल नहीं पाती कि वह गिलहरी है। इस पूरे संसार की अनुभूति उसने गिलहरी की आँख से, गिलहरी के खोल में की है। गिलहरीपन उसका यथार्थ है जैसे स्त्री-शरीर में होकर स्त्री-देह, स्त्री-मन, स्त्री-आत्मन को निवेदित सारे संताप और उसी में संलग्न अदुभुत आनन्द की हिलोरें महसूसना मेरा यथार्थ।

+44 7793 289566

रेखा सेठी: सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से आने वाले समय में स्त्री कविता क्या भूमिका निभाएगी?

अनामिका: एक पेड़ लगाने से शहर की जलवायु में बहुत कोई अंतर दिखाई नहीं देता। पर निरंतर पेड़ लगाए चलिए तो धीरे-धीरे पूरी फिजां बदल जाती है। साहित्य का प्रभाव भी पेड़ की तरह ही धीमा, परोक्ष पर अवश्यमभावी होता है। स्पेस अजब चीज़ है। बिना माँगे कोई देता ही नहीं। लगातार लिखते-बोलते ही इत्ता-सा स्पेस हासिल किया है, सारी वंचित अस्मिताओं ने, अपने मनुष्य होने का विश्वास अर्जित किया है।

रेखा सेठी: एक आखिरी सवाल स्त्री कविता की सबसे बड़ी उपलब्धि क्या हो सकती है? क्या हमारा समाज 'जेंडर सेंसेटिव' होने की जगह कभी 'जेंडर न्यूट्रल' हो सकेगा यानी आप स्त्री हैं या पुरुष इससे कोई अंतर न आये और आपकी पहचान व्यक्ति रूप में हो?

अनामिका: अंतरंग स्पेस में जेण्डर-सेंसिटिव करना। प्रकृति ने सिर्फ दो जातियाँ बनाई हैं - स्त्री- जाति, पुरुष-जाति। इनकी देह-मन-भाषा का जो अंतरंग पक्ष है - उनकी जरूरतें थोड़ी अलग हैं, इसी हिसाब से इनकी दैहिक-मानसिक-भाषिक आवश्यकताएँ भी थोड़ी विशिष्ट हैं जिनके प्रति दोनों को संवेदनशील होना चाहिए।

जहाँ तक पब्लिक स्पेस का सवाल है, आदर्श स्थिति है जेंडर-न्यूट्रल होना। सारे नागरिक अधिकार और कर्त्तव्य समान अवसरों और संसाधनों का बराबर बँटवारा - इसमें कोई कोताही नहीं होनी चाहिए क्योंकि स्त्री, स्त्री होने के सिवा मनुष्य भी तो है।

रेखा सेठी: बहुत धन्यवाद अनामिका जी।

कुण्डली

प्रो. मधु चतुर्वेदी

श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय के सांस्कृतिक प्रकोष्ठ की अध्यक्ष, हित्यकार और विदूषी
madhuchaturvediauthor@gmail.com

वातायनम् के सुधि पाठकों को मेरा आत्मिक नेह-वन्दन!

दोहा कुण्डलिया बने, दें रोला से जोड़।
मात्रा क्रम को दीजिए, बस थोड़ा सा मोड़।।
बस थोड़ा सा मोड़, रखो दोहे को आगे।
रोला पकड़े पूँछ, उसी के पीछे भागे।।
बदल मात्रा-भार, सभी का मन है मोहा।
दें जब रोला जोड़, बने कुण्डलिया दोहा।।

उपर्युक्त कुण्डली मैंने कुण्डली के रचनाविधान को सरलता से प्रस्तुत करने हेतु रची है। यह न केवल कुण्डली छन्द का उपयुक्त उदाहरण है, वरन उसके रचनाविधान को भी सहजता से व्यक्त करती है। वातायनम् के पिछले अंकों में हम दोहा व रोला दोनों छन्दों का रचनाविधान विस्तारपूर्वक समझा चुके हैं। अब कुण्डली छन्द रचने हेतु आपको बस इतना करना है कि प्रथम एक दोहा रचने के बाद दो रोला उसमें जोड़ दें! पर ठहरिए, इतने मात्र से ही कुण्डली का रचनाविधान सम्पूर्ण नहीं होता। इसके अतिरिक्त कुछ आसान व छोटे नियम और हैं जिनका पालन करके आप एक सटीक कुण्डली की रचना कर सकेंगे।

पहला नियम इस छन्द के नाम में ही निहित है। जैसा कि हम जानते हैं, कुण्डली मारने के हेतु सर्प अपने आप को पीछे की ओर मोड़ता है, बस ठीक वैसी ही भंगिमा इस छन्द की भी है। इसमें पहले आने वाले दोहे का चतुर्थ चरण अपने आपको पीछे आने वाले रोला के प्रथम चरण के रूप में पुनरावृत्त करता है! दूसरे शब्दों में कुण्डली की तीसरी पंक्ति का प्रथम चरण, कुण्डली की द्वितीय पंक्ति के द्वितीय चरण का दोहराव ही है।

दूसरा, यह कि कुण्डली का प्रारम्भ हम जिस भी शब्द या शब्दसमूह के द्वारा करते हैं, हमें उसका अन्त भी उसी से करना होता है; जैसा कि उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त प्रतिपाद्य विषय का निरन्तर निर्वाह भी आवश्यक है। कोई भी एक दोहा और कोई भी दो रोला जोड़ कर आप कुण्डली छन्द की रचना नहीं कर सकते। तथ्य, कथ्य व शिल्प की सटीकता तो हर छन्द में आवश्यक है तो कुण्डली भी इसका अपवाद नहीं।

भाषा शुद्ध विज्ञान नहीं

डॉ. अशोक बत्रा
सेवानिवृत्त प्राचार्य, भाषा और व्याकरण के विशेषज्ञ
ashokbatra.ashok@gmail.com

भाषा विज्ञान नहीं है, शास्त्र है। विज्ञान में हमेशा दो और दो चार होते हैं। परन्तु भाषा में एक और एक ग्यारह हो सकते हैं। कारण? विज्ञान में हर बात तर्क और प्रमाण पर आधारित होती है, जबकि भाषा में कला-सौंदर्य, अभिव्यक्ति भंगिमा, दीर्घ परम्परा और नव-नव अनुभव-सम्पदा का भी योग होता है।

कुछ लोग यह भ्रम पाल लेते हैं कि व्याकरण एक जटिल विज्ञान है। इसके सब नियम विज्ञान और तर्क पर आधारित हैं। नहीं, बिल्कुल नहीं। भाषा में 'मेरी मर्ज़ी' नामक तत्त्व बहुतायत से पाया जाता है। भाषा में बोलने वालों की इच्छा, सुविधा और कला-संस्कृति का भी भरपूर योगदान होता है।

यदि व्याकरण विज्ञान और तर्क पर आधारित होता तो आप 'बीस' के बाद इकबीस, दोबीस, त्रेबीस, चौबीस कहते; परन्तु नहीं, हमने मुखसुख और सुविधा के चलते इक्कीस, बाईस, तेईस और चौबीस कहा। यह हमारी उच्चारण की सुविधा पर आधारित है।

आज कंप्यूटर-युग है। यहाँ कोडिंग-डिकोडिंग की खूब चर्चा होती है। मानो सारा अंतरजाल (इंटरनेट) कोडिंग-अनकोडिंग की भित्तिका पर खड़ा है। पर यह न भूलें कि भाषा भी मनमाने कोड यानी कूट ध्वनियों और कूट वर्णों का ही विशाल अंतर्जाल है। मज़े की बात यह है कि भाषा का हर घटक 'कूट' यानी 'कोड' है। जैसे 'क' कोड है, वैसे ही 'कब', 'कम', 'कल' आदि शब्द भी कोड हैं। शब्दों से बने मुहावरे भी कोड हैं और लोकोक्तियाँ भी कोड हैं। इनके निहित अर्थ हमारे अपने बनाए हुए हैं और मनमाने हैं। प्रायः इन्हें शब्दकोशों और परम्परागत व्यवहार से समझा जाता है।

भाषा की हर ध्वनि प्रतीकात्मक है। 'क' को ही लें। इसका उच्चारण, लेखन, प्रयोग सब मनमाना है। पंजाबी, तमिल, कन्नड़, अंग्रेजी वाले इसी ध्वनि को कुछ अलग ढंग से बोलते और लिखते हैं। अंग्रेजी वाले इसे k, c, ch या ck से लिख लेते हैं। अतः 'क' ध्वनि का उच्चारण और लेखन विज्ञान की तरह सार्वभौमिक और सार्वकालिक नहीं होता। वह किसी भाषा की सामाजिक संपत्ति होता है। एक समाज उस ध्वनि को या शब्द को जिस रूप में स्वीकार कर लेता है, उसे सब लोग मानते हैं। भाषा की 'मनमानी' व्यक्तिगत नहीं होती, सामाजिक होती है। समाज द्वारा अपनाए गए भाषायी रूप को ही उसका व्याकरण कहते हैं। इसलिए किसी भी समाज की भाषा को और उसके व्याकरण को समझने के लिए उसकी परम्परा, संस्कृति, कला और अभिव्यक्ति को समझना पड़ता है। मूल समाज को समझे और जाने बिना भाषा को न समझा जा सकता है और न जाना जा सकता है।

कमाल की बात यह है कि फिर भी हमारे हिंदी भाषी कहते हैं – अंग्रेज़ी आसान है और हिंदी कठिन है। यह कैसे हो सकता है? हो ही नहीं सकता!

आप कभी किसी हिंदी वाले की अंग्रेजी भाषा सुनना-समझना। उसमें सब शब्द 'अभिधा' वाले मिलेंगे। अभिधा का अर्थ है, इकहरे अर्थ वाले शब्दार्थ। जबकि भाषा का रोमांच-रोमांस, रस और ध्वनि तो उसकी

लक्षणा और व्यंजना से उदभूत होती है। ये व्यंजनाएँ उसी समाज में से पैदा होती हैं। अंग्रेज़ी के मुहावरों को, लोकोक्तियों को, उसकी अभिव्यक्ति की भंगिमाओं को, उसके प्रत्येक शब्द और वाक्य से निकलने वाली ध्वनि और रस को बिना उस भाषा-समाज में रहे, बिना उसमें डूबे लिखना असम्भव है।

किसी भाषा में 'कहे' से अधिक 'अनकहा' होता है, जो कहने वाले की वक्रोक्ति, बांकपने, और होठों पर तैरते अहसासों से सीखा जाता है। इसीलिए हम अपनी भाषा में मुँह को थोबड़ा बना सकते हैं, किंतु दूसरी भाषा में नहीं। अपनी भाषा में चक्षु, चख, अक्ख, आँख, अँखियाँ, अँखड़ियाँ जैसे कितने ही रूप बनाए जा सकते हैं किंतु विदेशी भाषा में हमारे पास एक निगोड़ी आई (eye) ही रहती है; ध्वनि-संसार की अनेकानेक व्यंजनाएँ नहीं रहतीं। और 'अँखियाँ' से जो आप कह जाते हैं, वह लाख 'आँख दिखाने' पर भी नहीं कह पाते।

लघु कथा

पापा, ऐसा है

नीलमणि

कार्टूनिस्ट और लेखक

"सिया कल क्यों नहीं आई थी कॉलेज?" मैंने पूछा।

"अरे, क्या बताऊँ! चार दिन तक सुबोध कॉलेज नहीं आया था ना तो घर आ गया नोट्स लेने। बाबा बैठक में थे; उन्होंने मुझे आवाज़ लगाई और मैंने जाकर सुबोध को नोट्स दे दिए।

अगले दिन सुबह जैसे ही मैं कॉलेज जाने के लिए रिक्शे में बैठी, तो पापा भी आकर मेरे साथ बैठ गए।

"मुझे भी उधर ही जाना है।" उन्होंने कहा।

"अगले दिन भी फिर वही हुआ। तीसरे दिन जब पापा फिर साथ चले तो मुझे लगा कि दाल में कुछ काला है। मैंने कॉलेज आने से साफ़ इन्कार कर दिया।"

'तो फिर?'

'फिर क्या, मैंने उनसे कहा कि यदि आपको मुझ पर भरोसा नहीं है, तो मुझे नहीं करनी पढ़ाई। आप मेरी एक फौजी से सगाई करवा चुके हैं और उन्हीं के कहने से मैं बी.एड कर रही हूँ तो फिर मुझ पर पहरा क्यों?"

मेरे शब्द उन्हें तीर की तरह लगे; तीनों एक-दूसरे का मुँह ताक रहे थे।

"बस... इसीलिए नहीं आ पाई थी कल कॉलेज," सिया की आँखों में आत्मविश्वास की चमक थी।

बाल कहानी

अमलतास का रहस्यं

ललित शौर्य

उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा सम्मानित युवा लेखक
mlalit982@gmail.com

गरमी के दिन थे। चारों ओर उमस फैली हुई थी। रात को गरमी से बचने के लिए लोग छत पर सो रहे थे। अमलतास के फूलों की हल्की मीठी सुगंध हवा में घुली हुई थी। रोहन आज छत पर नहीं सोया था। वह घर के अंदर अपने बैडरूम में लेटा हुआ था। उसे नींद नहीं आ रही थी। रात के बारह बज चुके थे। अचानक बिजली चमकी और उसने रोशनदान से रंगबिरंगी रोशनी आते हुए महसूस की। वह उठकर बैठ गया; रोशनी और गहरी हो चली थी। यह रोशनी घर से बाहर सड़क से आ रही थी। ऐसा लग रहा था मानो कोई बाहर से लेज़र-लाइट घुमा रहा हो। उसने खिड़की खोलने का प्रयास किया लेकिन रोशनी इतनी ज़्यादा थी कि उसकी आंखें चौंधिया गयीं; कुछ भी साफ़ नहीं दिखाई दिया। वह डर के मारे चादर ओढ़कर सो गया। अगले दिन सुबह उसने सारी बातें अपनी दादी को बता दीं।

"रात को मैंने सड़क से कमरे के अंदर रोशनी आती हुई देखी। रोशनी रंगबिरंगी थी। पता नहीं कौन हमारे घर के अंदर लेज़र-लाइट लगा रहा था।"

"तुम्हें रात को सड़क पर देखने की क्या ज़रूरत थी; उस वक्त सड़कों पर भूत-प्रेत चलते हैं। मेरी नानी कहा करती थी कि रात को भूत-प्रेत नृत्य करते हैं। गाना गाते हैं। उनकी बारातें निकलती हैं। अगर इस समय उन्होंने किसी इंसान को देख लिया तो वे उसे मार डालते हैं।" दादी ने बताया।

"अरे! दादी। आप भी कैसी बातें करती हैं। भूत-प्रेत कुछ नहीं होता। ये सब कोरी कल्पनाएं हैं। मैं नहीं मानता ये सब।" रोहन ने हंसते हुए कहा।

"अगर मेरी बात सच नहीं तो फिर रोशनी घर के अंदर कैसे आ गई? आजकल अमलतास के पीले फूल खिले हुए हैं और उसकी मीठी खुशबू से भूत-प्रेत आकर्षित होते हैं। रात को भूतों ने यहीं डेरा डाल लिया होगा।" दादी बोली।

"ऐसा कुछ भी नहीं है। भूत पर मैं कभी विश्वास नहीं कर सकता; जो कुछ भी है सच बहुत जल्द सामने होगा।" रोहन ने आत्मविश्वास भरे शब्दों में कहा।

नहा धोकर रोहन अमलतास के पेड़ के पास गया; वहाँ कुछ फूल बिखरे पड़े थे किंतु टहनियों से फूल गायब थे। ऐसा लग रहा था मानो उन्हें कोई चुनकर ले गया हो। आखिर अमलतास के फूल कौन ले जा सकता है? दिनभर उसके दिमाग में रोशनी, अमलतास और भूत-प्रेत की बातें ही घूमती रही। कभी उसको लगता दादी की बातें सच तो नहीं हैं, लेकिन फिर वह अपने मन को समझाता कि भूत-प्रेत कुछ नहीं होता।

इसी ऊहापोह में दिन बीत गया। रात को फिर आज वह अपने कमरे में ही सोया। आज दादी का मोबाइल फ़ोन भी उसने अपने पास रख लिया था। वह उस पर लेज़र लाइट और अमलतास आदि के बारे में जानकारी सर्च कर रहा था। वह अमलतास का रहस्य जानने को उत्सुक था। रात के करीब साढ़े बारह बज चुके थे। फिर वही रोशनी रोशनदान से अंदर कमरे में घुसी। रोहन सकपका गया। आज

उसने घर की छत से अमलतास के रहस्य को जानने का मन बनाया। वह चुपके से सीढ़ियों से होता हुआ छत पर पहुंचा।

छत पर पहुंचते ही उसने जब अमलतास को देखा तो उसके होश उड़ गए। चार-पाँच नाटे कद के अजीबोगरीब प्राणी अमलतास के फूल तोड़कर अपने बैग में भर रहे थे। अमलतास के पेड़ के पास उनका एक यान भी था; जिसमें से रंगबिरंगी रोशनी निकल रही थी। रोहन उनको करीब से देखने के लिए घर से बाहर निकल आया। वह अमलतास के पेड़ के करीब पहुंच गया और दूसरे पेड़ की ओट में छिप कर उनकी बातें सुनने लगा।

"अब तो मैं लंबा हो जाऊंगा। अमलतास के फूल की खोज बहुत लंबे समय से थी। यह हमारे ग्रह पर तो मिलता ही नहीं है।" पहले प्राणी ने कहा।

"हां, डॉक्टर फोजो फ़ाइव इससे अनेक प्रकार की दवा बनाकर बेचेंगे। जिससे हम मालामाल हो जाएंगे। अब हमारे ग्रह में कोई नाटे कद का नहीं रहेगा।" दूसरा प्राणी बोला।

"हाइट बढ़े या ना बढ़े लेकिन इससे हमारे पेट की समस्याएं दूर हो जाएंगी। हमारा रक्त साफ़ हो जाएगा; और भी अन्य औषधियां बनेंगी।" तीसरा बोला।

आपस में बातें करते हुए तीनों हंसने लगे। फिर जल्दी से उन्होंने फूलों को समेटकर अपने विमान में रखा और चल दिये। रोहन पेड़ की ओट से यह सब देखता रहा। वह समझ गया था कि ये दूसरे ग्रह के प्राणी हैं; जिन्हें एलियन कहते हैं। वह उनके यूएफ़ओ को तब तक देखता रहा जब तक कि वह उसकी आँखों से ओझल नहीं हो गया। अगले दिन जब उसने दादी को यह बात बताई तो वह हंस कर बोलीं, "तुम्हें ज़रूर दो दिन से सपने आ रहे हैं। तभी ऐसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हो।"

रोहन एलियंस को देखकर रोमांचित था; उसने अपनी आँखों से उन्हें देखा था किंतु उस दिन के बाद फिर कभी वे एलियन लौटकर नहीं आये। उधर, दादी भूत-प्रेत की बातें दोहरा रही थीं। गर्मियों भर रोज़ अमलतास की ठंडी छाव में बैठकर रोहन उनका इंतज़ार करता रहा।

बाल-कविता

बल्ला

डॉ. कृष्णा कुमारी

बल्ला

इक दिन गोलू के मन में
आया यूँ ही एक ख़याल
जा कर बोला दादू से,
हम तुम मिलकर करें कमाल।

अपने अनुभव मुझे सुनाओ,
जीने की कुछ कला बताओ
अनमोल आप की है हर सीख
सार-सार मुझ को सिखलाओ।

नई-नई तकनीक आप को,
मैं भी कुछ बतलाऊंगा
रील, एफ.बी., इण्टरनेट
इक- इक चीज़ सिखाऊंगा।

दो पीढ़ी मिल बैठीं तो
दादा-पोता हुए निहाल
गोलू से तकनीक सीख कर
दादा करने लगे धमाल।

गोलू ने भी सीख लिए
दादू से शिक्षा-संस्कार
ओल्ड और न्यू के संगम से
बच्चो! हुआ यह चमत्कार।

बाल-कविता

चंदा मामा

सम्राट समीर
samratsameer1880@gmail.com

चंदा मामा

चंदा मामा, चंदा मामा,
रोज़ नहीं क्यों आते हो
घूम-घुमक्कड़ तेरह चक्कर
अपना राज़ बताते हो।

धीरे-धीरे आना तेरा
सबको खुशी दिलाते हो
धीरे-धीरे जाना तेरा
सबको उदास कर जाते हो।

मेरी बूढ़ी दादी अम्मा,
तेरी कथा सुनाती थी
तुम सबके हो प्यारे मामा
रस लेकर बतलाती थी।

चंदा मामा, चंदा मामा,
बच्चों को खूब भाते हो
घूम-घुमक्कड़ तेरह चक्कर
आँख-मिचौनी लाते हो।

धीरे-धीरे आकर तुम तो,
अपना रूप दिखाते हो।
धीरे-धीरे जाकर तुम तो,
बिल्कुल ही छिप जाते हो।

बाल-कविता

डॉलू-चैरी के नानू

दिशा ग्रोवर
disha_grover@live.com

डॉलू-चैरी के नानू

जैसे होते सबके नानू
हैं चैरी के भी नानू
लेकिन डॉलू को तो लगते
बच्चों-से नटखट नानू।

चैरी कहती घोड़ा बनना
बन जाते नानू भालू
नाम रखें ना याद कभी भी
कह दें गुड़िया को शालू

घर के बाहर रोज़ खिलाते
भर-भर कालू को खाना
डॉली कह दे घर ले आओ
टालू बन करें बहाना

खाने के शौकीन बहुत हैं
रबड़ी, टिक्की हो आलू
खुश हो सबको खूब खिलाते
हो चैरी या फिर डॉलू।

प्यारे-प्यारे लेकिन लगते
डॉलू चैरी के नानू।
झट फ़रमाइश पूरी करते
जादू जैसे हैं नानू।

खर्राटों को नजरअंदाज ना करें

डॉ. विकास सिंह

हृदय रोग विशेषज्ञ, स्वर्ण पदक विजेता
dr.vikas.s@gmail.com

रात हो या दिन, खर्राटे सुनना किसी को अच्छा नहीं लगता; खर्राटों को लोग अच्छी या गहरी नींद से भी जोड़ कर देखते हैं। इन्हें नज़रंदाज़ करना उचित नहीं है। खर्राटों के दौरान यदि किसी की साँस कुछ पल के लिये रुक जाती है तो इससे हृदय संबंधी जानलेवा परेशानी होने की संभावना भी बढ़ जाती है; मेडिकल भाषा में इसे 'स्लीप-एपनिया' कहते हैं।

साँस कुछ समय के लिए रुक जाने से व्यक्ति की नींद प्रभावित होती है। खर्राटों के इस क्रम से न केवल उच्च रक्तचाप के अनियंत्रित हो जाने का खतरा बढ़ जाता है, अपितु लकवा, हृदयाघात और धमनियों में रुकावट की संभावना भी बढ़ जाती है।

खर्राटों की समस्या आम है, सात में से एक वयस्क को 'स्लीप एपनिया' की शिकायत है, जो मुख्यतः दो प्रकार की होती है: ऑब्स्ट्रक्टिव स्लीप एपनिया (OSA) और सेन्ट्रल स्लीप एपनिया (CSA)। OSA का ताल्लुक काफ़ी हद तक मोटापे से है। गले की जो माँसपेशियां, जो ऊपर की श्वास नली को खुला रखने में मदद करती हैं, वे मोटे लोगों को नींद आते ही शिथिल पड़ जाती हैं, जिससे श्वास नली का रास्ता अवरुद्ध होने लगता है और खर्राटों की आवाज़ आने लगती है।

रास्ते के पूरी तरह बंद हो जाने पर व्यक्ति की साँस 20-30 सेकंड के लिए रुक जाती है, जिससे उसकी नींद खुल जाती है। सेन्ट्रल स्लीप एपनिया अपेक्षाकृत कम लोगों में पाया जाता है, जिसमें दिमाग की तरंगें, नियमित रूप से बाहर नहीं पहुंच पाती।

अकेले रहने वाले लोगों को अधिकतर इस बीमारी का पता ही नहीं चल पाता; घरवाले या सहकर्मी ही आपको इस बारे में बताते हैं, इसलिये ज़रूरी है कि आप उनकी बात पर गौर करें।

सांस न आने पर नींद से अचानक जागकर सांस लेना, हांफते हुए जागना, दिन में थका महसूस करना और बैठे-बैठे सो जाना, सुबह सिर-दर्द होना और काम में ध्यान न केंद्रित कर पाना इस बीमारी के कुछ कुछ लक्षण हैं।

Photo by ShutterStock

Photo: Peaceful CPAP Sleep by StockCake

इस बीमारी का पता 'स्लीप स्टडी' पॉलीसोम्नोग्राफ़ी द्वारा आसानी से लगाया जा सकता है, जिसमें रोगी की नींद पर नज़र रखी जाती है - श्वास में कितनी बार रुकावट आती है, ऑक्सीज़न की मात्रा कितनी कम होती है और अन्य कई बिंदुओं की जाँच करके पता लगाया जाता है कि बीमारी की तीव्रता कितनी है।

खान-पान में सुधार लाकर अपने वज़न घटाने और स्वास्थ्यकारी दिनचर्या अपनाने से इस बीमारी का उपचार संभव है। समस्या बड़ी हो तो एक खास यंत्र CPAP (Continuous Positive Airway Pressure) द्वारा मरीज़ के चेहरे पर एक मास्क के सहारे हवा साँस की नली में पहुँचाई जाती है, इससे व्यक्ति ना केवल खर्राटों से बचता है बल्कि अच्छी नींद पाकर सुस्ती से भी निजात पाता है। यही नहीं, ऐसे लोग जिनका उच्च रक्तचाप कई दवाइयों के बाद काबू में नहीं आ रहा, वह भी नियंत्रित हो जाता है।

प्राणायाम स्लीप-एपनिया के पूरक उपचार के रूप में सहायक हो सकते हैं - अनुलोम-विलोम, भ्रामरी और उज्जायी प्राणायाम श्वसन तंत्र को मजबूत करते हैं, वज़न नियंत्रण में मदद करते हैं और तनाव कम कर नींद की गुणवत्ता सुधारते हैं।

नियमित अभ्यास से उच्च रक्तचाप पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यह ध्यान रहे कि योग चिकित्सकीय उपचार का विकल्प नहीं, बल्कि सहायक उपाय है।

फिल्म समीक्षा

‘धुरंधर’ या आंधी

तिथि दानी

पुरस्कृत लेखिका, अनुवादक और पत्रकार, कविताएं अनेक भाषाओं में अनूदित
tithidani2014@gmail.com

बहुत लंबे समय से प्रतीक्षा थी कि कब नेटफ्लिक्स पर यह फिल्म आए और कब देखने को मिले जिसकी पूरी दुनिया वाहवाही कर रही है! बहुत उम्मीदें थीं, लेकिन बात वही निकली - नाम बड़े और दर्शन छोटे। मैं यह नहीं कहूंगी कि आदित्य धर अच्छे फ़िल्म निर्देशक नहीं हैं लेकिन आवश्यक नहीं कि वे हर फ़िल्म में बेहतर प्रदर्शन कर सकें। उनकी दूसरी फिल्मों की तुलना में यह फ़िल्म काफ़ी कमज़ोर लगी।

मेरे विचार में किसी भी फ़िल्म को कालजयी होने के लिए उसमें कहानी का पक्ष बहुत मज़बूत होना चाहिए लेकिन यहां हिंसा इस कदर हावी हो गई है कि वह अंतर्मन को झकझोरती नहीं केवल वीभत्स प्रतीत होती है। इसलिये भावनाओं की समग्र अभिव्यक्ति और कहानी कहने के लिए पर्याप्त स्पेस नहीं बचा। जहां तक बात यथार्थ के चित्रण की है तो हिंसा का प्रदर्शन तर्कसम्मत लगता है लेकिन यह फ़िल्म पूरी तरह से यथार्थपरक भी नहीं है। यह कोई समानांतर सिनेमा नहीं बल्कि विशुद्ध कमर्शियल फिल्म है| इसकी लंबाई और उसका किसी पीरियड दौर से निकल कर अचानक आधुनिक दौर में आ जाना पचता नहीं है।

फिल्म के दृश्य में ऐसा लगता है कि यह काफी पुराने समय की बात हो रही है लेकिन वहीं अचानक नायिका को एक आधुनिक क्लब में डिस्को पर झूमते हुए दिखाया जाता है। यह असंगति सोचने पर मजबूर करती है कि निर्देशक की दृष्टि में बारीक पकड़ नहीं है और वह थोड़ी कमज़ोर पड़ गई है। आदित्य की और फिल्मों की बात की जाए तो बतौर निर्देशक 'उरी' तो बतौर निर्माता मुझे बेहतर लगीं; ‘आर्टिकल 370’ तो बहुत ही नायाब लगी और इसकी वजह भी यही लगती है कि कहानीकार अकेले आदित्य नहीं है। इस फिल्म में निर्देशक आदित्य सुहास जम्भाले ने

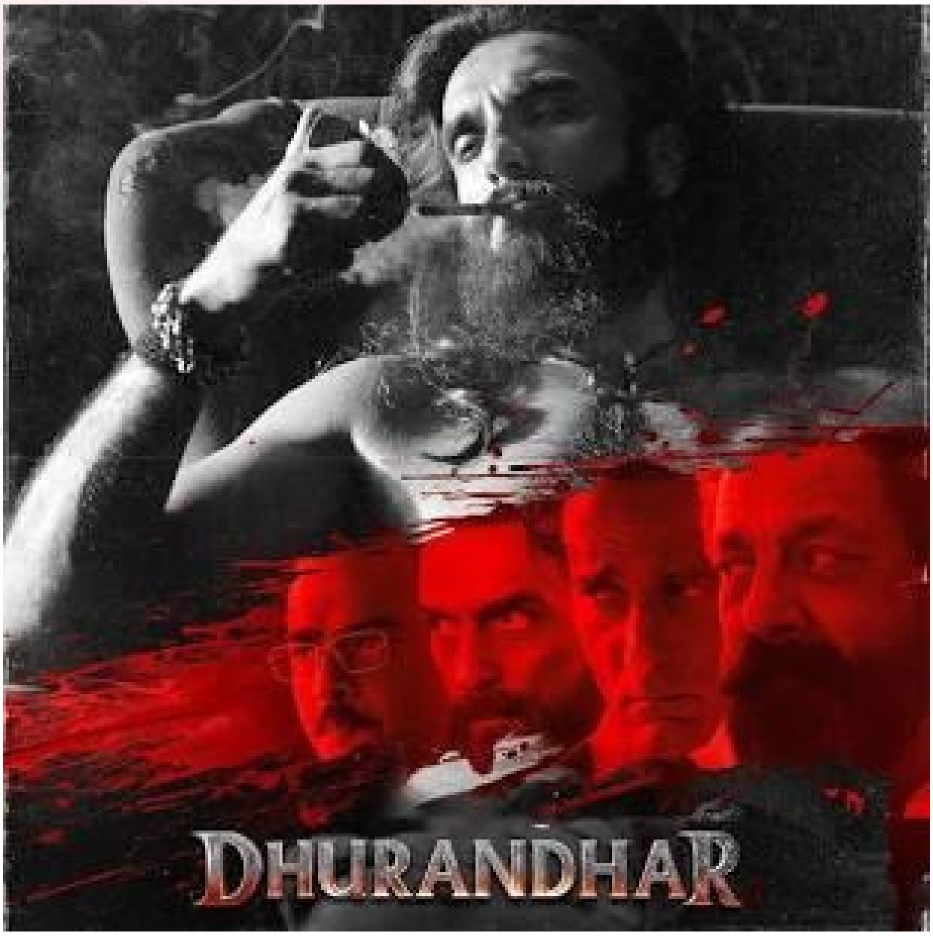

पूरा न्याय किया है उस कहानी को दिखाने में जिसमें अनावश्यक विवरण नहीं है।

बहरहाल यहाँ बात '‘धुरंधर' की है - अभिनय की बात की जाए तो रणवीर बहुत विश्वसनीय लगे हैं, अक्षय खन्ना का गेटअप और एक्सप्रेशन बहुत अच्छा है। लेकिन फिर भी, वे जिस खूंखार अपराधी रहमान डकैत का किरदार निभा रहे हैं, उसमें उतने खतरनाक नहीं लगे जिस तरह से वह अपनी पिछली फिल्म 'छावा' में औरंगज़ेब का किरदार निभाते हुए लगे। एक खलनायक का प्रदर्शन तभी जीवंत और स्मरणीय होता है जब वह वाकई में इतना बुरा और निर्दयी लगे कि देखने वाले के मन में वही डर उत्पन्न हो जो उस समय सच में उसके आसपास रहने वाले लोगों में हुआ होगा।

एक दृश्य में रहमान डकैत की बीवी (सौम्या टन्डन) उसे बेटे की मृत्यु के बाद ज़ोर का तमाचा मारती है। इस दृश्य का उद्देश्य ज़रूर ही रहमान डकैत के अंदर रहने वाली मानवीय संवेदना को उजागर करना रहा होगा लेकिन ऐसा होता नहीं है क्योंकि दर्शक को यह समझ में आता है कि जो इंसान अपनी माँ को मौत के घाट उतार सकता है, उसका अहम बीवी के सामने कैसे झुक जाता है? यह फिल्म ब्लॉकबस्टर हो सकती है लेकिन अपूर्व और विलक्षण नहीं।

यहाँ भी मुझे नीरज पांडे कृत अक्षय कुमार की फिल्म 'बेबी' की याद आती है, जिसमें वही जासूस एजेंसियों का उल्लेख है और जाँबाज ऑफ़िसर्स की बहादुरी और देशभक्ति की कथा है लेकिन वह फिल्म इतनी क्रिस्प है, एडिटिंग इतनी चुस्त-दुरुस्त है और फिल्म का फ़्लो इतना इंगेजिंग है कि आप एक पल के लिए भी नज़र हटाएंगे तो कथा को भांप नहीं पाएंगे कि क्या हो गया! एक-एक किरदार का चुनाव बेहद गंभीरता से किया गया है खास तौर पर उस उम्रदराज़ आतंकवादी के आते ही बैकग्राउंड में एक म्यूज़िक चलता है और लंबा आलाप चलता है जो उन देशों की फिज़ाओं में गूंजता है लेकिन ‘धुरंधर’ में ऐसी कोई भी विशेषता नज़र नहीं आती।

'धुरंधर' के प्रसिद्ध गीत को छोड़ दिया जाए तो संगीत फूहड़ और विरोधाभासी लगता है, जैसे उषा उत्थप का ‘रंबा हो रंबा हो’ गीत चल रहा है और गोलियां भी चल रही हैं। डायलॉग "घायल हूँ इसलिए घातक हूँ" के सिवा कोई ख़ास याद रखने वाला डायलॉग भी इस फ़िल्म में नहीं है। एक बात मुझे खटक रही है कि बहुत अधिक चर्चा अक्षय खन्ना, रणवीर की और अर्जुन रामपाल की हो रही है; संजय दत्त की तरफ़ बहुत कम लोगों का ध्यान गया है। वह अपने किरदार में आदर्श दिखाई पड़ता है; यह उसके श्रेष्ठतम कामों में से एक है।

उसने एसपी असलम की भूमिका में डर और चुलबुले अंदाज़ की युति भी बख़ूबी दिखाई है। वेशभूषा और बॉडी लैंग्वेज सब कुछ उसके किरदार के मुताबिक मुफ़ीद है। कुल मिलाकर ‘धुरंधर एक्शन-थ्रिलर, फिल्मों की भीड़ में औसत से बेहतर कही जा सकती है। गीत में जो एक प्रसिद्ध हुआ है, 'यखी दूस दूस' वही फ़िल्म में भी अनुकूल लगता है। फिर भी कर्णप्रियता की बात करें तो मुझे जो ठीक लगा वह 'आंधी बनकर आया हूँ' है।

डच लोककथा: 'चुहिया की शादी'

डॉ. ऋतु शर्मा ननंन पाँडे (अनुवादक)

अध्यक्ष, अंतरराष्ट्रीय हिन्दी संगठन-नीदरलैंड
ritus0902@gmail.com

बहुत समय पहले की बात है, नीदरलैंड के एक गाँव में एक किसान अपनी पत्नी और तीन बेटों के साथ रहता था। किसान और उसकी पत्नी अपने बेटों से बहुत प्यार करते थे। एक दिन किसान की पत्नी ने किसान से कहा, "सुनो जी अब मैं बूढ़ी हो रही हूँ। मुझसे अब घर की ज़िम्मेदारी नहीं सँभाली जाती। आप तीनों बेटों की शादी कर दो तो उनकी बीवियों के आने के बाद हम सब मिल कर घर का काम संभाल लेंगे।" किसान ने कहा "बात तो तुम सही कह रही हो। मैं कल ही तीनों बेटों से बात करता हूँ।"

अगले दिन किसान ने अपने तीनों बेटों को बुलाया और उनसे कहा कि अब तुम तीनों शादी के लायक़ हो गये हो इसलिए मैं और तुम्हारी माँ चाहते हैं कि तुम तीनों को अब शादी कर लेनी चाहिए। पर हमारी एक शर्त, 'तुम तीनों जिन लड़कियों से शादी करोगे, हम उनका पहले इम्तिहान लेंगे। क्योंकि हम चाहते हैं कि तुम तीनों शादी के बाद बहुत खुश रहो। इसलिए हम जानना चाहेंगे कि वे लड़कियाँ तुम्हारी अच्छी पत्नियाँ बनेगी या नहीं?"

बड़े बेटे ने किसान से पूछा, "पर पिताजी हमें ऐसी लड़कियाँ कहाँ मिलेंगी जो आपकी इस शर्त पर खरी उतरें?"

किसान ने कहा चलो मेरे साथ और वह उन्हें अपने बाग़ान में ले गया। उसने अपने तीनों बेटों को सामने खड़े पेड़ दिखाते हुए कहा, "जाओ तुम तीनों सामने खड़े पेड़ों को काटो, पेड़ जिस दिशा में गिरेंगे बस उसी दिशा में तुम्हें अपनी होने वाली पत्नी को खोजने जाना होगा।" पहले बेटे पहला पेड़ काटा तो वह पूर्व दिशा में गिरा। बड़ा बेटा मन ही मन बहुत खुश हो गया क्योंकि उसे पता था कि पूर्व दिशा में एक धनी किसान रहता है, जिसकी बहुत सुंदर और गुणीली बेटी है। दूसरे बेटे पेड़ काटा तो वह पश्चिम दिशा में गिरा। दूसरा बेटा भी खुश हो गया क्योंकि वह पहले से ही पश्चिम दिशा में रहने वाले किसान की बेटी को जानता था। वह बहुत सुंदर होने के साथ साथ बहुत समझदार भी थी। तीसरे बेटे ने जब पेड़ काटा तो वह उत्तर दिशा में गिरा। दोनों भाई उसके पेड़ को देख कर ज़ोर ज़ोर से हँसने लगे क्योंकि वे जानते थे कि नीदरलैंड के उत्तरी दिशा में बहुत बर्फ़ पड़ती है और वहाँ सिर्फ़ रेंडियर और भेड़िये ही मिलते हैं। उन्होंने हँसते हुए छोटे भाई डॉनियल से कहा, "भाई तेरी शादी तो अब किसी भेड़िये या रेंडियर से ही होगी।" डैनियल ने अपने भाइयों की बातों का ज़रा भी बुरा नहीं माना क्योंकि उसे भरोसा था जो भी होगा अच्छा ही होगा।

अगले दिन किसान के तीनों बेटे अपनी होने वाली पत्नियों के लिए उपहार ले कर अपने अपने पेड़ों की दिशा में पत्नी ढूँढ़ने के लिए निकल पड़े। छोटा बेटा जानता था कि उत्तर दिशा में उसे सिर्फ़ भेड़िये और रैंडियर ही मिलेंगे।

जंगल में चलते चलते उसे एक बड़ा सा घर दिखाई दिया। जैसे-जैसे वह उस घर के पास पहुँचता जा रहा था उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा; उसकी अपनी होने वाली पत्नी को पाने की उम्मीद बढ़ती जा रही थी। उसने घर का दरवाज़ा खटखटाया तो वह अपने आप खुल

गया। वह घर के अन्दर घुसा तो उसे अन्दर कोई दिखाई नहीं दिया। उसने आवाज़ लगाई, “कोई घर में है क्या?”

“क्यों मैं तुम्हें घर में बैठी दिखाई नहीं देती? अन्दर आ जाओ।” घर की बैठक में एक सुंदर से छोटे से सिंहासन पर एक बहुत प्यारी सी सफ़ेद चुहिया ने अपनी मूँछ के बाल संवारते हुए कहा।

डॉनियल ने देखा आवाज़ अंदर बैठक के कमरे से आ रही थी। “तुम? जो मैंने अभी सुना क्या वो तुमने कहा?” डॉनियल ने आश्चर्यचकित होते हुए सोने सिंहासन पर बैठी चुहिया से पूछा। “तुम्हें यहाँ मेरे सिवा कोई दूसरा दिखाई दे रहा है? नहीं ना? मैंने ही तुम्हें अंदर आने के लिए कहा था और तुम देख और सुन भी सकते हो कि मैं बोल सकती हूँ। सफ़ेद चुहिया ने डॉनियल से कहा। डॉनियल ने अपने जीवन में पहली बार किसी चुहिया को यूँ सजे धजे और बोलते हुए देखा था।

चुहिया ने डॉनियल से पूछा, “तुम यहाँ कैसे पहुँच गए?”डॉनियल ने चुहिया को अपने माता-पिता द्वारा विवाह के लिए दी हुई शर्तों और पेड़ों के कट कर अलग-अलग दिशा में गिरने की बात बतायी। उसने चुहिया को बताया कि उसका बड़ा भाई पूर्व दिशा में अपना जीवन साथी ढूँढ़ने गया है और दूसरा भाई पश्चिम दिशा में अपनी पत्नी ढूँढ़ने के लिए गया है। क्योंकि उसके द्वारा काटा गया पेड़ उत्तर दिशा में गिरा था इसलिए वह अपने पिता की शर्त को पूरा करने के लिए इस ओर जंगल में अपने लिए पत्नी ढूँढ़ने निकल आया। जंगल में चलते-चलते उसने यह बड़ा सा घर देखा और सोचा कि शायद उसे यहाँ अपनी जीवन साथी मिल जाएगी। पर तुम तो एक छोटी सी चुहिया हो।

“मुझे पता है मेरे दोनों भाइयों को जिस दिशा में वह गये हैं कोई न कोई लड़की विवाह के लिए ज़रूर मिल ही जाएगी। पर मेरी तरफ़ से शायद मेरे माता-पिता को निराश ही रहना पड़ेगा।“ डॉनियल ने चुहिया को बताया।

“चुहिया हूँ तो क्या हुआ? तुम चाहोगे तो मैं तुम्हारी एक अच्छी पत्नी बन सकती हूँ। तुम्हारे पिता जो कहेंगे मैं वो सब कर सकती हूँ। तुम्हें प्यार भी करूँगी और तुम्हारा ख़्याल भी बहुत अच्छे से रखूँगी। वैसे तो तुम्हें पता ही है, बहुत ज़्यादा ठंड होने के कारण लोग यहाँ नहीं रहते। इसलिए मुझे नहीं लगता की तुम् किसी लड़की को अपने लिए यहाँ ढूँढ़ पाओगे।” चुहिया ने डॉनियल को सुझाव दिया।

डॉनियल को बोलती हुई चुहिया इतनी प्यारी लग रही थी कि उसने उसे अपने हाथों में उठा लिया। जैसे ही डॉनियल ने चुहिया को अपने हाथों में उठाया चुहिया ने बहुत मधुर आवाज़ में उसके लिए गाना गाना शुरू कर दिया। डॉनियल उसे पास से देखने के लिए उसे अपने चेहरे के पास लाया तो वह डॉनियल के उँगलियों पर चढ़ कर अपनी छोटी सी नाक से डॉनियल के गाल सहलाने लगी। उस प्यारी सी चुहिया के गाने और उसकी समझदार बातों ने डॉनियल का मानों दिल ही जीत लिया था। वह चुहिया से बोला, “ठीक है मैं अपने माता-पिता को जा कर बता देता हूँ कि मुझे भी मेरी जीवन संगिनी मिल गई है।” उसकी बात सुन कर चुहिया डॉनियल की तरफ़ देख कर बोली, “क्या तुम सचमुच मुझ से शादी करोगे? क्या यह सब तुम्हारे लिए आसान होगा? हम ऐसा करते हैं, पहले तुम अपने माता-पिता के पास जा कर उन्हें यह सूचना दे दो कि तुम्हें लड़की मिल गई है। मैं बाद में तुम्हारे साथ चलूँगी। तब तक तुम अपने माता-पिता को इस विवाह के लिए तैयार कर लेना।”

डॉनियल को चुहिया की बात सही लगी। वह चुहिया से जल्दी वापस आने का वादा करके वहाँ से अपने माता-पिता के घर की ओर रवाना हो गया। जब वह अपने घर पहुँचा तो देखा उसके दोनों बड़े भाई भी वापस आ गये हैं। बड़े भाई ने माता-पिता को बताया कि जिस लड़की को उसने पसंद किया है, वह बहुत सुंदर है और उसकी आँखें भी बहुत बड़ी बड़ी हैं।

दूसरे भाई ने भी अपनी होने वाली पत्नी की प्रशंसा करते हुए कहा कि “मैंने जो लड़की अपने लिए पसंद कि है, वह भी बहुत सुंदर है और उसके

बाल भी बहुत लंबे है। तुम उत्तरी दिशा में गये थे, तुम्हे तो वहाँ कोई मिला नहीं होगा सिवाय रैंडियर और ख़तरनाक भेड़ियों के।” ऐसा कह कर बड़ा भाई ज़ोर ज़ोर से हँसने लगा।

डॉनियल ने अपने दोनों भाइयों की बातों को अनसुना करते हुए अपने माता-पिता को बताया, “मुझे भी मेरी पत्नी मिल गई है। वह मख़मल के कपड़े पहनती हैं। सोने के सिंहासन पर बैठती है और जब वह गाती है तो मानों कानों में कोई रस घोल रहा हो। वह बड़े सुंदर घर में रहती है।”

डॉनियल की बातें सुन कर दोनों भाई आश्चर्य से उसे देखने लगे। “चलो अच्छा हुआ तुम तीनों को अपने विवाह के लिए मनपसंद लड़कियाँ मिल गई। पर हमें यह देखना अभी बाक़ी है कि उन लड़कियों को घर का काम भी आता है या नहीं? इसलिए हम चाहते हैं कि तुम तीनों अपनी होने वाली पत्नियों से ब्रेड बनवा कर लाओ।” उनके माता-पिता ने उन तीनों से कहा। माता-पिता की बात सुन दोनों भाई डॉनियल की तरफ़ देखकर बोले, “हमें तो पता है कि हमारे वाली बहुत अच्छी ब्रेड बनाएँगी पर डॉनियल, तुम्हारे वाली तो राजकुमारी जैसी है, वह कैसे ब्रेड बनाएगी?”

डॉनियल ने कहा, “यह तो मुझे भी उससे पूछना पड़ेगा।” पर अन्दर ही अन्दर डॉनियल को इस बात की चिंता हो रही थी कि एक छोटी सी चुहिया ब्रेड कैसे बना पाएगी? अगली सुबह तीनों भाई अपनी अपनी होने वाली पत्नियों के पास जाने के लिए घर से निकल पड़े। डॉनियल जब चुहिया के घर पहुँचा तो चुहिया उसे देख कर ख़ुशी से नाचने गाने लगी। डॉनियल ने चुहिया को अपने माता पिता की ब्रेड बनाने वाली बात बताई और कहा, “मुझे पता है तुम यह सब नहीं कर पाओगी। मैं ख़ुद ही ब्रेड बना कर अपने माता-पिता के पास ले जाऊँगा।”

“नहीं, तुम्हें ऐसा करने की कोई ज़रूरत नहीं है। मैं तुम्हारे माता पिता के लिए बहुत अच्छी ब्रेड बना कर दे सकती हूँ।” चुहिया ने कहा। “पर तुम तो बहुत छोटी सी हो।”

“मैं सब कर लूँगी बस तुम देखते रहो। चुहिया ने प्यार से इठलाते हुए डॉनियल से कहा और अपने पास टेबल पर रखी एक छोटी सी घंटी बजाई। घंटी की आवाज़ सुनते ही वहाँ बहुत सारे चूहे–चुहियाँ इकट्ठा हो गए। चुहिया ने उन सबको आदेश दिया, “तुम सब जा कर मेरे लिए अनाज के सबसे अच्छे वाले दाने लेकर आओ।” सारे चूहे-चुहियाँ वहाँ से झट से भाग गए और थोड़ी ही देर में उन्होंने वहाँ बहुत बढ़िया क़िस्म के गेहूं के दानों का ढेर लगा दिया। चुहिया उन सब दानों से ब्रेड बनाने लगी। डॉनियल बड़े उत्साह और हैरानी के साथ चुहिया को ब्रेड बनाते देख रहा था। कुछ ही समय में चुहिया ने एक बड़ी सी ब्रेड चाँदी की थाली में रेशम के कपड़े से ढक कर डॉनियल के हाथों में पकड़ा दी।

“लो अब ब्रेड तैयार है। तुम इसे ले जा कर अपने माता-पिता को खिला सकते हो।” डॉनियल को ब्रेड की ख़ुशबू ही बहुत अच्छी लग रही थी। उसे लगा कि यह ब्रेड तो मेरे माता-पिता को ज़रूर पसंद आ जाएगी।

जब वह घर पहुँचा को उसके दोनों बड़े भाई भी वहाँ अपनी अपनी पत्नियों की बनाई ब्रेड लेकर मौजूद थे। बड़े भाई की होने वाली पत्नी ने राई वाली ब्रेड बनाई थी दूसरे भाई की होने वाली पत्नी ने जौ लगा कर ब्रेड बनाई थी। उनके माता-पिता ने दोनों भाइयों की होने वाली पत्नियों के हाथों से बनी ब्रेड खाई और तारीफ़ में कहा, “जैसे गाँव की लड़कियों को ब्रेड बनानी चाहिए, तुम्हारी होने वाली पत्नियों ने वैसी ही ब्रेड बनाई है। वे तुम दोनों को ठीक से ब्रेड बना कर खिलाती रहेंगी।” दोनों भाई अपनी होने वाली पत्नियों की बड़ाई सुन कर बहुत खुश हुए। डॉनियल ने चाँदी की थाली में रेशम के कपड़े से ढकी ब्रेड अपने माता-पिता की तरफ़ बढ़ा दी। उसकी माँ ने ब्रेड पर से रेशम का कपड़ा हटाया तो ब्रेड की बहुत अच्छी ख़ुशबू आने लगी। ब्रेड को देखते ही उसके पिता ने कहा, “यह तो बहुत अच्छी ब्रेड है। लगता है कि किसी महँगे अनाज ले बनी है,” डॉनियल की माँ ने ब्रेड का एक टुकड़ा मुँह में रखा तो मानों जैसे ब्रेड मुँह में घुल गई

हो। उन्होंने डॉनियल से कहा, "लगता है तुम्हारी पत्नी किसी बहुत अमीर परिवार से है?"

डॉनियल ने कहा, "उसने तो बस एक बार घंटी बजाई और उसके सेवक ब्रेड बनाने के लिए अच्छा अनाज ले आए और फिर उसने उस अनाज से ब्रेड बना दी।" उनके माता-पिता ने कहा, "अब हमें यह तो पता लग गया कि तुम्हारी होने वाली पत्नियाँ तुम्हें अच्छे से खाना खिला सकती है। पर अब एक बात और पता करनी है कि तुम्हारी होने वाली पत्नियों को सिलाई कढ़ाई भी आती है या नहीं? तुम उनसे हाथ की कढ़ाई का एक-एक नमूना ले कर आओ।"

डॉनियल के दोनों बड़े भाई बहुत खुश थे। उन्हें पता था कि उनकी होने वाली पत्नियों के लिए यह मुश्किल काम नहीं है पर डॉनियल चिन्तित था कि क्या एक चुहिया कपड़े पर कढ़ाई कर सकती है? पर इससे ज़्यादा डॉनियल इस बात से खुश हो रहा था कि वह एक बार फिर से उस प्यारी सी चुहिया से मिल सकेगा। अगली सुबह फिर से तीनों भाई अपनी अपनी पत्नियों की दिशा में घर से निकल पड़े।

जब डॉनियल चुहिया के पास पहुँचा तो चुहिया फिर से उसे देख कर खुश हो कर नाचने गाने लगी।" डॉनियल ने कहा, "मैं भी तुमसे मिल कर बहुत खुश हूँ, लेकिन? लेकिन?" "लेकिन क्या? तुम्हारे माता पिता ने फिर से कोई शर्त रखी है क्या?" चुहिया ने चिन्तित होते हुए डॉनियल से पूछा। "हाँ, वे तुम्हारे हाथ की कढ़ाई देखना चाहते है। मैंने तो आज तक किसी चुहिया को कढ़ाई करते नहीं देखा।" डॉनियल ने चुहिया से पूछा।

"बस इतनी सी बात?" चुहिया ने हँसते हुए डॉनियल की तरफ़ देखा। उसने फिर से अपनी घंटी बजाई और एक बार फिर से उसी दरवाज़े से बहुत सारे चुहे-चुहियाँ वहाँ इकट्ठे हो गए। चुहिया ने कहा, "जाओ सबसे अच्छे रेशम के धागे और कपड़ा ले आओ।" थोड़ी देर में ही वे चुहिया के लिए बहुत सुंदर रेशम का कपड़ा और रेशम के धागे ले आए। चुहिया ने उन रेशम के धागों से रेशम के रूमाल पर बहुत सुंदर बारीकी से कढ़ाई कर दी। उसने उस कपड़े को एक सुंदर सी चाँदी की डिब्बी में रख कर डॉनियल को दिया और कहा, "यह डिब्बी अपने माता-पिता को देना तो उन्हें पता लग जाएगा कि मैं कढ़ाई कर सकती हूँ या नही?"

डॉनियल वह डिब्बी ले कर अपने घर की ओर चल दिया। तीनों भाई घर पहुँच चुके थे। उन दोनों भाइयों ने अपनी अपनी पत्नियों के हाथों से कढ़ाई करें रूमाल अपने माता-पिता को दिखाए। डॉनियल के पास छोटी सी डिब्बी थी जिसे उसने अपनी जेब में रखा था। इसलिए उसके भाइयों को लगा कि उसकी राजकुमारी कढ़ाई नहीं कर पाई। उनके माता-पिता ने दोनों भाइयों के लाए कपड़े देखे और कहा, "यह तो सुंदर है थोड़ा मोटा है पर समय के साथ सुधार होता जाएगा। तुम्हारी पत्नियाँ तुम्हें सुंदर सुंदर कपड़े बना कर पहनाएँगी।"

पिता ने डॉनियल से पूछा, "तुम्हारी राजकुमारी ने भी कुछ बनाया है या नहीं?" डॉनियल ने अपनी जेब से चाँदी की छोटी सी डिब्बी निकाल कर अपने पिताजी की तरफ़ बढ़ा दी। उसके दोनों भाई मज़ाक़ करते हुए डॉनियल से बोले, "अच्छा तुम्हारी राजकुमारी ने कपड़े के बदले यह डिब्बी भेजी है?"

उसके पिता ने जब डिब्बी खोली तो उसमें से एक बड़ा सा रेशम का बहुत बारीकी से की गई सुंदर कढ़ाई का रूमाल निकला। कपड़ा देखते ही उसके दोनों भाइयों की हँसी बंद हो गई। उसके माता-पिता ने कहा, "वाह बहुत सुंदर। बहुत सुंदर और बारीक कढ़ाई। यह कपड़ा भी बहुत महँगा है।" आज से पहले उन्होंने इतना अच्छा कपड़ा कभी नहीं देखा था। "कमाल है एक राजकुमारी भी इतनी सुंदर और बारीक काम कर सकती है? अब हम तुम तीनों की होने वाली पत्नियों से मिलना चाहते हैं। तुम तीनों अपनी होने वाली पत्नियों को यहाँ ले कर आओ। डॉनियल ने जब अपने माता-पिता की यह इच्छा सुनी तो वह सोचने लगा, अगर मेरे दोनों बड़े भाइयों को यह पता लग गया कि मेरी होने वाली पत्नी कोई राजकुमारी नहीं चुहिया है तो वे मेरी बहुत हँसी उड़ाएँगे। मेरे माता-पिता भी शायद इस विवाह के लिए कभी हाँ न करें। पर फिर भी मैं उनके लिए अपनी

प्यारी चुहिया को नहीं छोड़ सकता। उसने मेरे लिए ब्रेड बनाई, कढ़ाई की और वह मुझे बहुत पसंद भी करती है। मैं उसे यूँ ही नहीं छोड़ सकता। जब वह चुहिया के घर पहुँचा तो चुहिया फिर बहुत खुश हो उसके हाथों पर चढ़ गाना गाने लगी। डॉनियल ने उसे बताया कि उसके माता-पिता अपनी तीनों बेटों की होने वाली पत्नियों से मिलना चाहते हैं। चुहिया ख़ुशी के मारे नाचने लगी। उसने पहले की तरह अपनी घंटी बजाई और घंटी की आवाज़ सुनते ही वहाँ सैंकड़ों चुहे-चुहियाँ एकत्र हो गए। “मेरे लिए एक सुंदर सी बग्गी तैयार करो,” चुहिया ने उन्हें आदेश दिया।

कुछ ही देर में वे चूहे-चुहियाँ उसके लिए नारियल के खोल से बहुत सुंदर बग्गी बना कर ले आए। उसे दो मोटे चूहे खींच रहे थे। एक बड़ा सा चुहा उस बग्गी पर चाबुक ले कर कोचवान बनकर बैठा था। पूरी बग्गी में मख़मल का कपड़ा लगा था। जिसपर हीरे मोती से कढ़ाई की गई थी। चुहिया बग्गी में बैठ कर डॉनियल के साथ साथ चलने लगी। डॉनियल ने चुहिया से कहा, “हो सकता है मेरे दोनों बड़े भाई तुम्हें देख कर तुम पर हँसे। यह भी हो सकता है कि मेरे माता-पिता तुमसे शादी करने के लिए न मानें। पर तुम इन सब बातों की चिंता मत करना। मैं तुम्हें पसंद करता हूँ और मैं हमेशा तुम्हारी रक्षा, करूँगा ठीक वैसे ही जैसे एक पति को अपनी पत्नी की करनी चाहिए।”

वे जंगल में आगे बढ़ते जा रहे थे, तभी रास्ते में एक नदी पड़ी। नदी के ऊपर एक पुल बना था जिस पर चढ़ कर उन्हें नदी पार करनी थी। डॉनियल और चुहिया की बग्गी जब उस पुल पर आधे रास्ते में थे, तभी बहुत ज़ोर से आँधी आई और चुहिया की बग्गी पुल से उड़ कर नदी में गिर गई। डॉनियल ने चुहिया की बग्गी को पानी में इधर-उधर देखा पर उसे चुहिया कहीं दिखाई नहीं दी। वह उदास हो कर रोते रोते कह रहा था, “तुम भले ही एक चुहिया थीं पर न जाने क्यों मैं तुमसे बहुत प्यार करने लगा था। एकदम वैसे ही जैसे कोई पति अपनी पत्नी को करता है।”

जब वह यह कह रहा था तभी वहाँ नदी के किनारे एक सुंदर सी बग्गी जिसे दो अरबी घोड़े खींच रहे थे जिसके पीछे की तरफ़ एक लंबा सा कोचवान खड़ा था, वहाँ आकर रुकी। डॉनियल ने इतनी सुंदर बग्गी पहले कभी वहाँ नहीं देखी थी। डॉनियल ने आगे जा कर बग्गी में झांक कर देखा तो उसमें एक बहुत ख़ूबसूरत लड़की, जो बिल्कुल राजकुमारी जैसी लग रही थी, बैठी थी। उसने सफ़ेद मख़मल की पोशाक पहनी थी। उसके सुनहरे बालों में बहुत सारे हीरे मोती सजे हुए थे। उस लड़की ने बग्गी की खिड़की से पर्दा हटाते हुए डॉनियल से पूछा, “क्या तुम मेरे साथ इस बग्गी में बैठना पसंद करोगे? मैं अपने होने वाले पति के माता-पिता से मिलने जा रही हूँ।” डॉनियल ने दुखी स्वर में उस सुंदर लड़की से कहा, अभी आँधी से इस नदी में गिर गई है। मैं उसे बहुत प्यार करता था। मैं तुम्हारे साथ इस बग्गी में नहीं बैठ सकता।”

बग्गी वाली लड़की ने डॉनियल से कहा, “ज़रा एक बार मेरी तरफ़ देखो। क्या मैं तुम्हारी होने वाली पत्नी जैसी नहीं लगती?” यह कहते ही उसने वही गाना गाया जो वह जब डॉनियल घर आता था तब चुहिया उसके लिए गाती थी। डॉनियल ने जब चुहिया की आवाज़ सुनी तो उसने बग्गी में बैठी लड़की को ध्यान से देखा। लड़की ने उसे बताया कि वह वही चुहिया है जिसे वह अपने माता-पिता से मिलवाने ले जा रहा था। “पर तुम चुहिया से इंसान कैसे बन गई?”

“मैं जब छोटी थी तब मैंने खेल-खेल में एक चुहिया का बहुत मज़ाक़ उड़ाया था। उसने ग़ुस्सा हो कर मुझे भी चुहिया बना दिया। जब मैं बहुत रोई तो उसने कहा जब मुझे कोई ऐसा व्यक्ति मिलेगा जो मुझे चुहिया के रूप में सच में प्यार करेगा, तब मैं फिर से राजकुमारी बन जाऊँगी। आज तुमने मुझसे कहा कि तुम मुझे बहुत प्यार करते हो तो मैं उस श्राप से मुक्त हो गई और फिर से राजकुमारी बन गई।”

डॉनियल ख़ुशी से उस लड़की के साथ उसकी बग्गी में बैठ कर अपने माता-पिता के घर की ओर रवाना हो गया।

अंतरराष्ट्रीय साहित्य

हेंड्रिक मार्समैन की कविताएँ

डॉ. ऋतु शर्मा ननंन पाँडे (अनुवादक)

अध्यक्ष, अंतरराष्ट्रीय हिन्दी संगठन-नीदरलैंड
ritus0902@gmail.com

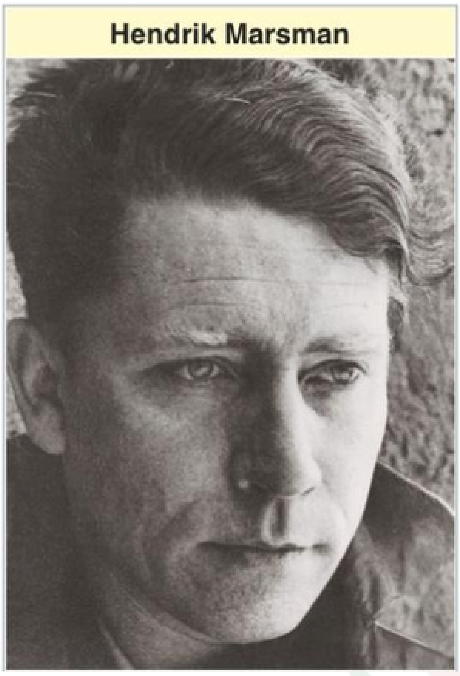

हेर्ड्रिक मार्समैन 20वीं शताब्दी के सबसे प्रसिद्ध डच कवि, भाषाविद अनुवादक, व आलोचक थे। उनकी कविताएँ डच साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इनकी महत्वपूर्ण पुस्तकों में "Herinnering aan Holland" है। उनका जन्म 30 सितंबर 1899 को नीदरलैंड्स के ज़ाइस्त शहर में हुआ था। युवावस्था में वे अपने दो भाइयों की तरह नेगी ऑफिस बनना चाहते थे। स्कूल की शिक्षा के बाद उनका रुझान क़ानून की पढ़ाई की ओर हुआ और नीदरलैंड्स के सबसे पुराने विश्वविद्यालय लाईदन से कानून की पढ़ाई करने के बाद वे यूतरैखत में एडवोकेट बने।

इसके बाद वे यूरोप के अन्य देशों में भ्रमण करने लगे। वे अंतिम बार सन 1939 में नीदरलैंड्स आए। उस समय तक उन्हें नीदरलैंड्स में उन्हें बहुत प्रसिद्ध युवा कवि के रूप में सम्मान दिया जाने लगा था।

दूसरे विश्वयुद्ध के समय जब जर्मनी सेना द्वारा नीदरलैंड्स पर हमला हुआ तब वे अपनी पत्नी के साथ दक्षिण फ़्रांस चले गए जहाँ 1940 में जिस जहाज़ में वे यात्रा कर रहे थे, उस जहाज़ पर बम गिर जाने के कारण उनकी मृत्यु हो गई। उनकी कविताओं में जीवन, प्रकृति, और मानवीय अनुभवों को देखा जा सकता है।

1. हॉलैंड की याद

जब हॉलैंड की याद आती है
मैं देखता हूँ वहाँ की नदियाँ
कभी न ख़त्म होने वाले
मैदानों से होती हुई ढलानों
में जाती हुई।

अनगिनत आकाश तक
ऊँचे ऊँचे पेड़ों
के बीच से आती ठंडी हवा के झोंके
और विशाल और खूबसूरत
लहलहाते खेत, पेड़ों के
झुंड, गाँव, एक दूसरे से
गले मिलती ऊँची ऊँची मीनारें
चर्च के ऊपर घूमते चक्र।

ज़मीन को छूता आकाश
धूसर होते हुए रंगीन धुंध में
धीरे-धीरे डूबता सूरज
चारों ओर से पानी की कलकल
करती आवाज़ जिसे आप
सदियों तक यूँ ही सुन सकते है।

2. पचास की उम्र के बाद

पचास की उम्र के बाद
पत्तों का गिरना सही है
पर यह जानना भी अच्छा है कि
मज़बूत वृक्ष तब भी सीधे
खड़े रहते हैं।

बसंत में आने वाले तूफानों
से गिरते पत्तों को हमारे जीवन के
उतार-चढ़ाव की तरह होते हैं।
जैसे कई सालों बाद भी मेरे मन में
इच्छा रहेगी एक ऐसे घर में रहने की

जिसके पास एक नदी बहती
हो।
शिकार करना, नाव चलाना
वृद्ध होते हुए भी अंदर से
मज़बूत रह कर इस पार से उस पार
जाना
अपने जीवन यात्रा के
विषय में सोचते हुए,
पानी लहरों को पार करना
बहती हवा और मौसम से परिपक्व
होते
हमारे अंदर की आग हमारे
रोने और हँसने से भी
आसानी से बाहर नहीं आ सकेगी
लेकिन हमारे अन्दर एक शांतिपूर्ण
अग्नि
हमारी हड्डियों और रक्त-वाहिनियों में
छिपी
रह कर, अनंत देश में भटकती हुई
हमें और मज़बूत और, और ज़्यादा
शांत बनाएँगे।

मौसमों के प्रवाह में समाहित
अंतरिक्ष और बदलते मौसम से
गहरे जुड़े होने के बाद भी...
और फिर????
और फिर हम रात में आग के पास
बैठेंगे और मैं आपको एक पुस्तक में
से इस पर एक कहानी पढ़ कर
सुनाऊँगा।

आंचलिक

मरुधरा के सुरीले स्वर: जनकवि मो. सदीक भाटी

कौसर भुट्टो

सदीक साहब की पोती और कवयित्री

जनकवि मो० सदीक भाटी (1937-1998) राजस्थानी और हिन्दी भाषा के लोकप्रिय कवि थे। मरुधरा के इस सुरीले कवि का जन्म नागौर जिले के गोठ गाँव में हुआ। जमाल और केसर री क्यारी में जन्मे (पिताजी श्री जमाल खाँ भाटी, माताजी श्रीमती केसर भाटी) इस कवि को जनता ने अपना खूब प्यार दिया।

सदीक साहब को प्रारम्भिक शिक्षा तालाब किनारे पीपल के पेड़ के नीचे एक मन्दिर के पुजारी से मिली। बनारस से संस्कृत में 10वीं करने के बाद चुरू और जोधपुर से महाविद्यालय की पढ़ाई की। महाविद्यालय के समय वे फुटबॉल और टेबल टेनिस के अच्छे खिलाड़ी थे और उन्होंने महाविद्यालय की ओर से युवा महोत्सव में बीकानेर और जोधपुर का प्रतिनिधित्व किया। उसी दौरान प्रसिद्ध ग़ज़ल गायक जगजीत सिंह जी गंगानगर जिले का प्रतिनिधित्व करते थे। आपने 1955 में एम.एम. विद्यालय, बीकानेर में अंग्रेज़ी के अध्यापक पद पर सरकारी नौकरी शुरू की और साहित्य से जुड़ाव के कारण आप मातृभाषा राजस्थानी की सेवा में जुट गए। आपके रचनाकर्म पर आपकी माँ केसर जी का गहरा प्रभाव था। रचनाओं में प्रयोग हुई लोकोक्तियाँ और मुहावरे माँ से मिला ज्ञान थे। माँ की कही बात "बोली छोडे गोली" इतनी गहरी बैठ गई कि रचनाकर्म का माध्यम राजस्थानी ही चुना। हालाँकि 1992 में प्रकाशित काव्य-संग्रह "अभी अँधेरा है" हिन्दी में था, पर बाक़ी तीन संग्रह — जुझती जूण (1979), अंतस तास (1989), चेतै रा चितराम (2021) राजस्थानी में हैं। वे अक्सर कहते,

"मैं अंग्रेज़ी रो अध्यापक, जात रो मियों, पण लिखूँ राजस्थानी में हूँ।"

1970 के बाद आप बीकानेर में सीटी स्कूल, सार्दुल स्कूल, एस.आई.सी. स्कूल में सेवा देते हुए 1995 में डाइट के प्राचार्य पद से सेवानिवृत्त हुए। साक्षरता अभियान और राजस्थानी भाषा को मान्यता दिलाने के लिए चले आन्दोलन में भी आपकी सक्रिय भूमिका रही। आपकी प्रकाशित पुस्तकों के लिए आपको अनेक सम्मान मिले, जिनमें

'गणेशीलाल व्यास उस्ताद पुरस्कार' (1983), घनश्यामदास सर्राफ पुरस्कार (1993), पीथळ पद्य पुरस्कार (1996), मीरा पद्य पुरस्कार आदि प्रमुख हैं।

लगभग चार दशकों तक राष्ट्रीय कवि सम्मेलनों में आप छाए रहे और गोपालदास नीरज, सन्तोष आनन्द, हरीश भादाणी, शक्तिदान कविया, मेघराज मुकुल आदि शीर्ष कवियों के साथ मंच साझा किया। चेहरे पर चमक, कण्ठ में मिठास, वाणी में ओज और प्रस्तुति का गज़ब अन्दाज़ लिए जब वे जनता के गीत गाते तो श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते। कार्यक्रमों में आपको अक्सर अन्त में बुलाया जाता क्योंकि श्रोता आपके गीतों की फरमाइशों के साथ घण्टों जमे रहते थे।

सदीक साहब के गीतों में सद्भावना, मानवता और सामाजिक न्याय की अविरल धारा बहती है। उनकी कुछ हिन्दी रचनाओं के उद्धरण प्रसंगवश यहाँ हैं -

हम हैं हिन्दू, हम हैं मुस्लिम, हम हैं सिख, ईसाई रे,
जात-पाँत की ठेकेदारी, कौन बचेगा भाई रे।
धर्म के धोखे साँप घरों में रोज़ हमें क्यों डसते जी,
अपना नाम नमस्ते जी।
आपको सलाम मेरा, सबको राम-राम, अब तो बोल आदमी का आदमी है नाम।
मेरा तुलसी, मेरी मीरा, मेरा सन्त कबीरा रे, अब तो बोल आदमी का आदमी है नाम।
मेरा तुलसी, मेरी मीरा, मेरा सन्त कबीरा रे, इस दुनिया में नहीं मिलेगा मुझ-सा मस्त फकीरा रे, फिर क्यों मेरे घर आँगन में नाच रहा है शैतान।

राजनीतिक भ्रष्टाचार, अन्याय और जनता के प्रति कर्तव्यों से मुँह मोड़ते राजनेताओं को सचेत करते उनके तेवर-भरे गीत भी लोकप्रिय हुए -

"ईयाँ कियाँ रे भाई ईयाँ कियाँ,
न्याय ताकड़ी काँण कियाँ।"
"थे मजा करो महाराज,
आज धारी पाँचू घी मै है,
म्हें पुरस्यो सगळो देस और थारे काँई जी मै है।"

"बाबा थारी बकरियाँ बिदाम खावै रे,
चरगी म्हारा खेत सरेआम खावै रे।"
"नीचे दारू की दुकान,
ऊपर नेता का मकान।"

राजस्थानी अंचल के मीठे शब्दों और मुहावरों के प्रभावी उपयोग से उनकी रचनाएँ लोकजीवन की आवाज़ बन गईं -
घर घोस्याँ रा बलसी,
पण के उंदरिया सुख पावैला,
आँ लखणी राँ लाडा बाबू,
गट्टा गोळी खावैला,
चमचा-चमची करसी,
आंराँ चक्का जाम सा,
ताम-झाम सा।

सामाजिक विसंगतियों से लड़ने की प्रेरणा देते शब्द –
"दे गोतो डर भागसी,
बतळायाँ डर जागसी,
बुचकारयाँ डर लागसी, मिसरी मुंडे लाड लड़ायाँ,
बिण फागण भी फागसी, खुल्ली गोळ्याँ दागसी।"

इन्सानियत को सर्वोपरी मानते वे नए-नए बिम्बों से लिखते –
"बलती बाजे रे बावळिया करले मानखे से मोल,
दोरो जीवणो साथीड़ा जठै चौड़े धाड़े पोल।"
राजस्थान के रंगकर्मियों ने मानवीय संवेदना के धनी, सदीक साहब के गीतों को नाटकों और नुक्कड़ नाटकों में सामिल किया। माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान के कक्षा बारहवीं के ऐच्छिक विषय राजस्थानी में भी आपकी कविताएँ शामिल हैं। सदीक साहब ने मानवता की बातें केवल रचनाओं में नहीं कीं, बल्कि जीवनकर्म में भी उतारीं। सफाई कर्मी के सेवानिवृत्ति सम्मान समारोह से लेकर जरूरतमन्द साथी कवियों को आजीवन प्रतिमाह भत्ता देने तक, उनकी मानवीय संवेदनशीलता झलकती है।

सदीक साहब ने राजस्थानी भाषा को गीतों, ग़ज़लों और कविताओं से समृद्ध किया। सहज-सरल भाषा में अपने जीवन अनुभवों को समेटे उनका रचनाकर्म लोक की अन्तस-चेतना का साहित्य है। ऐसे अनमोल काव्य-स्रष्टा पर और अधिक अनुसंधान और संग्रहण की आवश्यकता है।

भोजपुरी भाषा: वर्तमान मानसिकता, गीत आ साहित्य

आशुतोष पथिक

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से परास्नातक कर रहल बानी

भोजपुरी का हऽ
भोजपुरी बाबा के रामायण अउर आजी के लोरी हऽ
भोजपुरी माई के आँचल, माई के गोदी,
अउर बाबूजी के पगड़ी हऽ
भोजपुरी गीत हऽ, राग हऽ
खेत हऽ, खलिहान हऽ
अउर हमार गाँव के श्रृंगार हऽ
लिखीं भोजपुरी, पढ़ीं भोजपुरी
भोजपुरी बिना हम ओइसहीं अधूरा बानी
जइसे अधूरा बाड़ी एगो सुहागिन - सेनूर बिना।

भोजपुरी भाषा हमार माटी, संस्कृति आ अस्मिता के आवाज हऽ। ई भाषा खाली शब्दन के मेल भर ना, बल्कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलत आ रहल अनुभव, संघर्ष आ संवेदना के निचोड़ हऽ। भोजपुरी में माई के लोरी बसल बा, बाबा के सीख अउर रामायण, महाभारत के मिठ किस्सा समाइल बा, किसान के पसीना आ मजदूर के मेहनत सांस लेत बा। एतना समृद्ध परंपरा रहला के बावजूद, आज के समय में भोजपुरी के लेके समाज के मानसिकता कमजोर पड़त जात बा, जवना चलते ई भाषा धीरे-धीरे अपन सही जगह से खिसकत जा रहल बा।

जब हमनी छोट बच्चा रहनी जा, तबे से हमनी के दिमाग में एगो खास सोच भरल गइल। स्कूल में सख्ती से सिखावल जात रहे कि हिंदी बोलल जरूरी बा आ अंग्रेज़ी बोले वाला होशियार मानल जाई। अगर गलती से कवनो बच्चा भोजपुरी बोल देत रहे, त ओकरा टोका-टाकी झेले के पड़त रहे। स्कूल के चारदीवारी में भोजपुरी के प्रवेश मानो अपराध बन गइल रहे। ओहिजे घरे माई-बाबा, दादी-नानी सब भोजपुरी में बोले, समझावे, कहानी सुनावे। एह तरह से धीरे-धीरे हमनी के भीतर ई बात बइठा दी गइल कि भोजपुरी घर-आंगन के भाषा हऽ, बाहर समाज में बोले लायक ना। एह मानसिकता के चलते भोजपुरी भाषा आंगन, रसोई आ घर के भीतर तक सिमट के रह गइल। एह सोच के असर आज समाज में साफ-साफ दिखाई देत बा। भोजपुरी बोले वाला लोग के अक्सर किसान, मजदूर भा गरीब मान लिहल जाला। जवन भाषा करोड़ों लोग बोलेला, ओकरा के पिछड़ेपन से जोड़ दिहल गइल बा। अगर किसान भा मजदूर के लइका पढ़-लिख के आगे बढ़ जाला, शहर पहुँच जाला, नौकरी पावेला, त ओकर भाषा भोजपुरी रहे के बजाय "हिंग्लिश" हो जाला। ऊ भोजपुरी बोले से कतराए लागेला, काहे कि समाज ओकरा पिछड़ा समझ ली। भाषा बदले के ई दबाव असल में सामाजिक वर्ग आ मानसिक गुलामी के नतीजा हऽ, जवन भोजपुरी के आत्मसम्मान पर सीधा चोट करत बा।

भोजपुरी गीत आज भाषा के सबसे ताकतवर माध्यम बन गइल बा। मोबाइल, इंटरनेट आ सोशल मीडिया के जमाना में भोजपुरी गाना देश-विदेश में सुनल जात बा। कई गीत आजो लोकसंस्कृति, प्रेम, विरह, मेहनत आ सामाजिक सच्चाई के सुंदर ढंग से प्रस्तुत करत बा। बाकिर अफ़सोस के बात ई बा कि बाजार के लालच में बहुत सारा गीत फूहड़ता, अश्लीलता आ सतही मनोरंजन तक सीमित हो गइल बा। एह तरह के गीतन के चलते भोजपुरी भाषा के छवि खराब हो रहल बा। लोग पूरा भाषा के दोष दे देला, जबकि असली

दोष भाषा के ना, बल्कि ओकर गलत इस्तेमाल करे वाली सोच के बा। ई बात समझल बहुत जरूरी बा कि भाषा खुद कबहूँ खराब ना होखेला, खराब होखेला ओकर प्रयोग। अगर साफ-सुथरा, अर्थपूर्ण आ सामाजिक चेतना से भरल गीतन के बढ़ावा मिले, त भोजपुरी गीत भाषा के सम्मान कई गुना बढ़ सकेला। एह जिम्मेदारी खाली कलाकार भा गीतकार के ना, बल्कि श्रोता आ दर्शक के भी बा, काहे कि जवन बिके ला, उहे बनावल जाला। जहाँ एक ओर भोजपुरी गीत विवाद के घेरे में बा, ओहिजे भोजपुरी साहित्य आजो मजबूती से खड़ा बा। भिखारी ठाकुर, महेंद्र मिस्र, शिवपूजन सहाय, राहुल सांकृत्यायन जइसन साहित्यकारन भोजपुरी के साहित्यिक गरिमा प्रदान कइले बानी जा। भिखारी ठाकुर के नाटक सामाजिक कुरीति पर करारा प्रहार हऽ, त महेंद्र मिस्र के गीत प्रेम आ पीड़ा के अमर अभिव्यक्ति हऽ। आजो कविता, कहानी, नाटक आ आलोचना के क्षेत्र में गंभीर भोजपुरी लेखन हो रहल बा, बाकिर प्रचार-प्रसार के कमी के चलते ई साहित्य आम पाठक तक ना पहुँच पा रहल बा।

शिक्षा व्यवस्था में भोजपुरी के उपेक्षा भी एगो बड़ा कारण बा। जवन भाषा करोड़ों लोग बोलेला, ओकरा आजो विद्यालय आ विश्वविद्यालय में सम्मानजनक जगह नइखे मिल पावत। अगर शिक्षा के माध्यम से भोजपुरी के अपनावल जाव, त बचपन से ही भाषा के प्रति नकारात्मक मानसिकता टूट सकेला। भाषा के सम्मान बिना शिक्षा के संभव नइखे। भोजपुरी के भविष्य हमनी सबके हाथ में बा। जब तक हम खुद अपन भाषा से शर्मिंदा रहब, तब तक दुनिया भी ओकर सम्मान ना करी। भोजपुरी बोले से कमतर महसूस करे के बजाय, एह पर गर्व करे के जरूरत बा। किसान आ मजदूर के भाषा कह के जवन ताना दिहल जाला, ऊ असल में मेहनत, श्रम आ ईमानदारी के अपमान हऽ। एह भाषा में जीवन बा, संघर्ष बा आ सच्चाई बा। अंत में इहे कहब कि भोजपुरी भाषा के बचावल मतलब खाली एगो भाषा के बचावल ना, बल्कि आपन जड़, आपन इतिहास आ आपन आत्मसम्मान के बचावल हऽ। जब भोजपुरी घर के आंगन से निकल के स्कूल, मंच, किताब आ समाज में अपन सही जगह पाई, तबे ई भाषा सही मायने में जिंदा रही। भोजपुरी कमजोर नइखे - एकरा कमजोर बनावल गइल बा। अब समय आ गइल बा कि हमनी ओकरा फिर से मजबूती से खड़ा करीं जा।

आंचलिक

कहानीः मृदुला

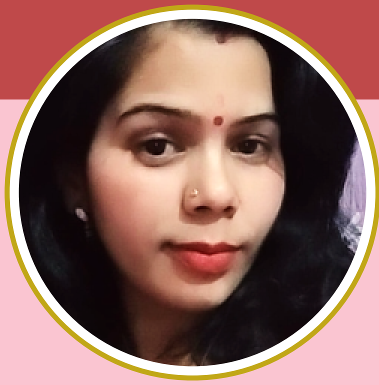

रिंकी सिंह

लेखिका, हिंदी आ भोजपुरी दूनों में सृजित करेली

मृदुला के घर से फेरु ऊहे आवाज उठत रहे। रोवे के, बर्तन गिरला के, लइकन के सिसकला के। मोहनलाल के घर ले साफ-साफ सुनाई देत रहे ई चीख। बाकिर अब ई सब उनकर खातिर नया ना रहे। हर साँझ ईहे होत रहे। जइसे ई मोहल्ला के हवा में भी अब ऊ दुख के गंध घुल गइल होखे। विनय - मृदुला के मरद... दारू पीके लउटे, आ फेर ऊहे सिलसिला शुरू हो जात। कबहूँ मृदुला पर हाथ उठावत, कबहूँ लइकन पर।

पड़ोसी दीवाल के पीछे चुपचाप सुनत रह जात -
“ई त रोज के बात हऽ...”
“उनकर घर के मामला हऽ...”
“बीच में पड़ल ठीक नइखे...”
धीरे-धीरे हिंसा रोज के एक रिवाज बन गइल रहे - आ मृदुला, ओ रिवाज के बलि।

ऊ तीन भाईयन के एकलौती बहिन रहे। बियाह में बैंड-बाजा से सजल रहे ओकर बारात, अरमान लेके उठल रहे

ओकर डोली। भाईयन के आँख में खुशी रहे - सोचल रहे बहिन रानी बनके ससुरा में राज करि। कवन जानत रहे कि ऊ बहिन के कवनो आदमी नाहीं, एक कसाई के हाथ सौंप रहल बाड़े लो। कुछ दिन त सब ठीक-ठाक चलल, फेर विनय काम से दारू पीके आवे लागल। पहिले साले ओकर असली चेहरा सामने आ गइल।

भाईयन के खबरो भइल... बाकिर बाबूजी बोललें -
“अब ऊ हमनी के ना रहल बेटा,
अब ओकर घर ऊहे हऽ।
लौट आई त लोग का कही?”

आ समाज ऊ दिन एक आउर कहावत के सच कर दिहलस...
“बेटी ससुराल से खाली चिता पर लउटेले।”

एक दिन मृदुला के छोट भाई अजय दौड़त आइल। बहिन के नीला पड़ल गाल, सूजल होठ, काँपत लइकन देख के ऊ टूट गइल रहल। मोहनलाल के घर आके सिर पकड़ के रो पड़ल -
“फूल जइसन बहिन दीहल रहे मोहन भइया... देखीं का हाल बना दिहलस ओकर!”

मोहनलाल धीरे से बोललें -
“जब ले ऊ खुद आपन मदद ना करी, कउनो इंसान ओकर मदद ना कर सकेला अजय, बाबूजी से कह, विनय से बात करें...”
अजय बस एतने बोल पाइल...
“ऊ त कउनो के बाते ना सुनत बाड़ें, अब इहाँ ना आईब...
बहिन के अइसन हालत देखल सहल ना जात ह।”

मृदुला तबहूँ मुस्कुरावत रहे। नाम जइसने ओकर सुभाव रहे - मृदु, सौम्य। लोगन से हँस-बोल के, लइकन के गोद में लेके गुनगुनावत। काहे कि ओकर लगे हँसे के अलावे कउनो हथियार ना रहे। दुख सहत औरत के सबसे बड़ प्रतिरोध ओकर मुस्कान ही त होला। मोहल्ला के औरतन ओकरा “बेचारी मृदुला” कह के दया देखावत, बाकिर ओकर भीतर धधकत ज्वालामुखी केहू ना देख पावत रहे। मोहनलाल कई बेर विनय के समझावे के कोशिश कइले। कबहूँ प्यार से, कबहूँ गुस्से से। एक दिन त तब हाथ उठा दिहलें, जब ऊ आपन बेटी पर लात मरलस। बाकिर मृदुला आ ओकर बड़की बेटी दौड़ के मोहनलाल के पाँव पकड़ लिहलीन,
“भइया... छोड़ दीं... उनकरा छोड़ दीं...”

ओ दिन से मोहनलाल चाह के भी कुछ बोल ना पावत रहें आ फेर ऊ रात आ गइल।

बरामदा में बइठल मोहनलाल के फेर ऊहे आवाज सुनाई दिहलस, बाकिर ई बेर चीख कुछ अलग रहे - बहुते करुण... कातर...
आ अचानक सन्नाटा, ऊ दौड़ पड़लें, दरवाजा बंद रह। खिड़की से झाँक के देखलें... विनय जमीन पर गिरल रहे। मृदुला ओकर छाती पर पाँव रख के दीवाल में ओकर सिर पटकत रहे। ओकर आँख से आँसू ना, सालन के दबावल सैलाब बहत रहे। मोहनलाल ठिठक गइले, पीछे से उनकर मेहरारू आ बेटी आ गइलीन,
ऊ धीरे से बोललें... “आज जे भइल... बहुत पहिले हो जाए के चाहत रहे।”
सुबह मोहल्ला में औरतन के फुसफुसाहट रहे...
“बड़ी मर्दमारन औरत हऽ...”
“छाती पर चढ़ के मरलस अपने आदमी के...”
एगो बोलत रहे...
“अरे, केतना सहे कोई?”
दूसरकी कहत रहे...
“बाकिर बहिन, आदमी पर हाथ कैसे उठा दिहलस?”
जब मृदुला बिहान बाहर निकलल, सबके नजर तीर बन के ओकरा पर गड़ गइल... जइसे ऊ कउनो अपराध कर दिहले होखे।

बाकिर जवन नजर में सबसे ज्यादा नफरत रहे ऊ औरतन के ही रहे। काहे कि ई समाज में औरत से जादा संवेदनशील आ औरत से जादा निर्दयी केहू अउर ना होला। कबहूँ-कबहूँ औरत के सबसे निष्ठुर लड़ाई ओकर आपन जात से ही होला।

मृदुला ओ दिन लोगन के बात दिल पर ना लिहलस। पीछे-पीछे चलत फुसफुसाई
“औरत होके मर्द पर हाथ उठवले...”
“छाती पर चढ़ के मारलस...”

अब ओकर भीतर के शांति के हिला ना पावत रहे। काहे कि मृदुला जानत रहे आज जवन ऊ कइलस ऊ जरूरी रहे। ओकर बेटी के सिर के बाल ऊ निर्दयी बाप उखाड़ दिहलस। लइकी के आँख में डर ना, अपमान रहे। आ ऊ अपमान देख के मृदुला के भीतर के माई जाग उठल रहे... ऊ माँ, जे बरिसन से चुप रहे, अपमान सहे, मार सहे, बाकिर आज आउर सहल असंभव रहे। अगर ऊ ओ दिन भी चुप रहती, त हार खाली एक औरत के ना होखित हार माँ के रूप के होत, हार आवे वाली पीढ़ी के होत। काहे कि औरत बन के झुकल समाज सिखा देला, बाकिर माँ बन के झुकल... प्रकृति भी कबो स्वीकार ना करेले।

ओ रात के बाद से मृदुला के घर से कउनो आवाज ना आइल। ना चीख, ना रोवाइ, ना काँच टूटे के आवाज। काहे कि विनय के नशा उतर गइल रहे... दारू के ना... मर्द होखे के घमंड के... आ मोहल्ला के हवा में पहिली बेर एगो नई गंध रहे... डर के ना, आत्मसम्मान के।

आंचलिक

कविता:
बियाहल मेहरारू के नइहर

मैकेश मिथिलेश

भोजपुरी लोक-संस्कृति आ नारी-विमर्श के संवेदनशील कवि

बियाह भइला के बाद
अब घर में लइकिन के
ओतने जगह बच जाला,
जेतना खिड़की, अलमारी
बन जइला के बाद
छोड़ दिहल जाला
घर में भेंटीलेटर के जगह...

जहाँ कबो उ आवे त
ई मन पड़त रहे कि
एक बेर ससुरार गइला के बाद
सब बिदा क दिहल जाला
जइसे बिदा क दिहल जाला
एगो बड़ झाँपि में
गेना झुनझुना
मैटिक इंटर के साटिफिकेट
कागज-पत्तर आ सर सामान...

हो सके कि
बियाह भइला के बाद
नइहर में कुछ दिन खाती
रख दिहल जात होखे
लइकि के बचल छुटल सामान
जवन लदा ना पाइल होखे टेक्टर पे
चाहे काम ना होखे
आगे के जिनगी में...

बाकी अइसन त नाहीये होत होखी
कि छोड़ दिहल जात होइ
उ लइकि खाती उ घर के जगह
जवना जगह प कबो ओकर
घर रहत होखे...

मन त आजो ह कि नइहर में
मेहरारू लो के जिनगी गुजर जाए
ई बात आज के थोड़े ह?
कि भाई से भाई के साथ भले छूट जाये
बाकी मेहरारू से नइहर ना छूटे...

मेहरारू लो के त आजो लागेला कि
चार गो रूम में एगो रूम बचा के
रखल गोइल होइ हमरो के,
सांझ के दु किलो दूध में
बचा के रख दिहल जात होइ
पाभर दूध हमरो के...
देवाली, दसहरा, होली में
किना के रखल जात होइ
दु सेट कपड़ा हमरो के...

बाकी किताब आ पन्ना के लिखल
लाइन हर जगह सही ना होला,
हम देखले बानि समय के साथ
आदमी के बदल जाला जरूरत
आ खतम हो जाला मरम,
जइसे खतम हो जाला

बियाह के बाद ओहिजा के
वोटर लिस्ट से नाम...

बाकी तबहु ई माने के
केहु तैयार कहाँ बा?
कि हार पाछ के लइकिने के नइहर होला
कवनों बियाहल मेहरारू के ना...

आंचलिक

कविता: बिन बेआहल माई

सिद्धार्थ सिंह साहिल

गहमर गाजीपुर प्रेम आ लोक-जीवन के सहज और संवेदनशील कवि

धिया भइनी तोर
हिया भइनी तोर
पिया गइलें छोड़
जिया भइनी तोर
कहलस सभे की मुआ दे ललनवा
करनवा कवन, ना मुअवले रे माई
हमरा के काहे जनमले रे माई।

घर-बार दुश्मन
परिवार दुश्मन
भइल बाटे
पूरा संसार दुश्मन
सब छंटलस तोरा के कुजात
तु बात, काहे ना सबकर मनले रे माई
हमरा के काहे जनमले रे माई।

दुनिया समाज से
डाहल माई
करहलस बचउवा
कराहल माई
भला कबो केहू
के इ कइसे पची
बन गइली तु बिन
बेआहल माई
बाप त कायर, परा गइले छोड़ के
मोड़ के मुंह तोसे भगले रे माई
हमरा के काहे जनमले रे माई।

मुआ देते हमके
भठा देते हमके
जनमते हीं नमक
चटा देते हमके
हमरा ला अपना के नरक में रखले
काहें ना जहर चटा देहले रे माई
हमरा के काहें जनमले रे माई।

Story (Part 1): Meharchand's Prayer

Dr. Achala Sharma

Former Head of BBC Hindi Service, broadcaster, writer
achala.sharma@gmail.com

"Your luck is about to change Meharchand."

Navin Bhai looked up from the newspaper he had been reading and announces this forecast. At that moment Mehar-e-Alam was concentrating on cutting Hari Bhai's hair. The good thing about Navin Bhai's Hair & DVD Salon is that one could always find the day's newspaper there. But the newspaper is useless for Mehar-e-Alam as Navin Bhai only reads The Gujrat Samachaar. Mehar-e-Alam peeks at the headlines about Pakistan in Urdu Jung whenever he gets a chance to go to the Halal Meat shop.

"How is that Navin Bhai?" He paused. It is better to stop when doing the delicate job of cutting Hari's hair. He would complain and threaten not to let Mehar-e-Alam touch his hair ever again if even a centimetre of his hair is left uneven. In that unfortunate event, he would lose his tip of one or two pounds which Hari bhai generously but mysteriously drops in his pocket before paying the seven pounds at the counter, as if Hari doesn't want Navin to see him tipping. Mehar-e-Alam is confident that Navin Bhai wouldn't mind because it is he who has given Mehar-e-Alam this job and the new name-Meharchand.

"The problem is that most of my clients are staunch Hindus who are purely vegetarians. So, you will be called Meharchand if you wish to work here. If you accept this condition, you can work here." Navin Bhai had set out the conditions.

Mehar-e-Alam didn't like the idea initially. He would have considered it for a minute if he had been asked to change his name to an English name like Mike or Mat but it didn't feel right to adopt a Hindu name. What would his family and friends say if the shameful news reaches Pakistan? They wouldn't like to see his face again. After a long and painful consideration, he decided that name is not

so important after all. He would not lose his religious faith because he has to earn a living for the sake of his family. Condition accepted.

Another small change in his life has been the routine of Namaz. Before working at Navin Bhai's Salon, Mehar-e-Alam used to say his prayers five times a day regularly but now he keeps so busy all day long that he had to find an alternative. He reads the Fajar Namazbefore leaving for work and Kaza at night which clubs the rest of prayers -Johar, Asr, Maghrib and Isha together. He is confident that he fulfils his duty as a Muslim. Rest is in the hands of Allah. Navin Bhai is a good man. He allows him leave to go for Friday prayers. If a regular client during his absence inquires about him, Navin bhai is always ready with a good excuse. Even though two other fellows, Ramesh and Vinod, work at his salon but Navin Bhai trusts Mehar-e-Alam more than any of them. So much so, that he often sends him to the bank to make cash deposits. And so, if Navin Bhai says that his luck is about to change then it must be true.

"Ok Hari Bhai. It is done." He held a mirror at the back of Hari's head for him to see the reflection in front of him.

"This is not the style I had asked for." Hari complained.

"Hari bhai, that would only be possible if you let me use the machine which you of course forbid me to use." Mehar-e-Alam tried to explain. What he really wanted to say was that you haven't got enough hair left on your head to make any style.

"So why don't you give me a head massage today" Mehar-e-Alam wished he could wriggle out of it. He wanted to talk to Navin Bhai, to understand what he meant by what he said. He wondered if Navin Bhai too was waiting for Hari to leave before saying anything further. But Mehar-e-Alam didn't want to offend a client like Hari. Had it been some other client, he would have easily found an excuse. With no other clients waiting, he doesn't even have a valid excuse. And then he is the only one available as Ramesh and Vinod are out at lunch.

"Which oil would you prefer?"

"Olive oil is better"

"You know Hari bhai, almond oil is better for hair because it is lighter than other oils and therefore quickly absorbed."

"If you say so but the massage should be real good".

Whatever little hair Hari is left with, they are mainly at the back of his head. But he still makes it a point to come for a hair cut every fortnight. While massaging his head Mehar-e-Alam occasionally glanced at Navin bhai sitting behind the counter with his eyes glued to the newspaper. Perhaps Navin bhai completely forgot what he had said earlier about Mehar-e-Alam's future. He wondered if he would get a chance to talk to him after Hari leaves. But if somebody else comes for a hair cut after Hari leaves, then what? He looked out of the window. Being a Saturday, there are more people around and more traffic on the road as compared to weekdays. People from surrounding areas also come to buy fruits and vegetables here. There are three big vegetable shops not far from each other and all of them are crowded.

"It seems there is more profit in selling fruit and vegetables Navin Bhai". He had expressed his thoughts one day.

"Meharchand, my belief is that one can only earn profit when one does the work one knows best." Navin Bhai had said.

How true! In the beginning, Shakeel had fixed him a job at the Halal Meat shop. But Mehar-e-Alam had no aptitude for being a butcher. All his life he had been a barber. He and his brother owned a hair dressing shop in Lahore. Unfortunately, the partnership didn't work for long because of a family dispute. He lost everything. A distant cousin, Mushtaq who lived in London suggested that if he comes to London, all will be well again. But London seemed far away. After the sale of the shop, his share came to two hundred and fifty thousand rupees. Mushtaq gave him the name of the agent who helps with visa etc. He met the agent who told him that the cost of getting a tourist visa for six months would be around one hundred and fifty thousand rupees. "And what will happen after six months?" he had asked.

"You could just disappear like many others do." The agent explained.

By the time he got the visa, the total cost came to two hundred thousand rupees. He still had to buy some new clothes and a ticket. When he left Lahore he was left with ten thousand rupees which he gave to his wife saying that he would soon send money when he gets a job in London. But jobs weren't waiting

for Mehar-e-Alam.

How hard he had to work to earn every pound since then, only he knows and of course Allah knows!

"Is it enough?" He asked Hari bhai who seemed to be enjoying the head massage.

Hari slips two pounds in his tunic pocket and goes to the counter to make the payment.

"You are charging a lot more than you used to Navin bhai", he complained. "You know, when I had more hair on my head, you charged me five pounds and now, with lesser hair left, I am supposed to pay seven."

"Blame it on the recession Hari bhai. What can I do? But I can assure you, my salon is still the cheapest. If you go to any other hair dressers they would charge you no less than fifteen to twenty pounds." Navin bhai returned the change to him.

"Let us hope things get better after the election".

"Nothing will change Hari bhai. All parties are aware of the fact that whosoever comes to power, economic conditions will only get worse. What an irony! A country ruled by the queen is beginning to look like a country with a begging bowl."

It is quite difficult to get rid of Hari bhai. As if he wants full value for the seven pounds he pays. Apart from his hair cut, he always engages Navin bhai in a debate about the world affairs. When he gets tired of speaking in Hindi, he switches to Gujarati. Gujarati is beyond Mehar-e-Alam though having worked with Navin Bhai, he has learnt a few words which mean 'come', 'how are you' or 'what is the news'. But beyond that his tongue gets stuck.

"Ok" An indication that Hari bhai is about to leave. Thank God! Mehar-e-Alam was so grateful to Allah when Hari left.

He moved closer to Navin bhai and asked, "What were you saying Navin bhai, about my luck..?"

"What was I saying?" This is Navin bhai's style to remember things he had forgot.

"Oh yes, you know, Liberal Democrats are saying that if they win this election, they will give amnesty to all those illegal immigrants who have been in the country for ten years."

"What does it mean Navin bhai?"

"It means that people like you will get a legal status. In the beginning you will get a two years

work permit and after that permanent visa. This would allow you to travel to Pakistan and live here legally. Later on you may also get a British passport. And yes, they also assure that such illegal immigrant will be allowed to invite one of their family members to this country."

Mehar-e-Alam's heart started to pound as if he had worked out in the gym for an hour.

"Really Navin Bhai?"

"That is what they claim. My advice for you is that you should learn English. I have told you time and again that it would be helpful if you learnt a bit of English."

Mehar-e-Alam had started to learn English a few years ago but gave up after some time. Navin Bhai is absolutely right. He must learn English. He simply cannot afford to postpone it any longer. He will register for a course next week. Nain too has been suggesting it for a long time.

"Are they likely to win?" He asked.

"I guess Tories will win this election." Navin bhai said after a moment of thoughtful silence.

"So?"

"But whichever of the two major parties, Tory or Labour, get more seats, neither of them would be able to form a government without the help of Liberal Democrats. And once the Liberal Democrats come into power, they would insist upon their own policies to be implemented. Keep on praying."

"Inshallah! I will pray for them Navin Bhai and when they come to power, I will say a special Namaz to thank Allah.

Mehar-e-Alam could not understand that how could Liberal Democrats be part of the government if they do not win the maximum seats. He decided to meet Fareed Bhai on his way back home. He might throw more light on the subject. Fareed bhai helped him when he had been working at the Halal meat shop. Fareed bhai was a regular customer. One day he complained to the shop owner, Aslam.

"I guess last time when I bought chicken from your shop some novice must have chopped it. It was not cleanly chopped because it had quite a few small bones."

"I am so sorry about this. I can assure you, it will never happen again. This new chap Mehar-e-Alam is still learning. Poor fellow needs some work. That is why I have employed him. From

now on I will personally chop it for you." Aslam had apologised.

"The fact is, butchery is not a skill one can learn, but an art." Fareed bhai had remarked jokingly.

Mehar-e-Alam can never forget that day. Without a clue to what Aslam and Fareed bhai was were discussing, he made his entry exactly at that point and had asked Aslam, "Where shall I cut? At the back of the shop would be nice because the weather is good."

Fareed bhai misunderstood the situation. He cautioned- "Be careful Aslam, you are not permitted to tether the lamb in the shops. If somebody finds out, you will be in trouble."

"He is not talking about the lamb Fareed sahib", Aslam laughed. "He wants to give me a haircut. He is in fact a barber by profession. That is what he did in Lahore. The fellow I was just now talking about. These days, we all are his clients."

"Oh I see" Fareed bhai had laughed heartily. "I was really alarmed. That reminds me, even I need a haircut."

"Shall I do it, now?" Mehar-e-Alam asked eagerly.

"Not here. Why don't you come to my place in the afternoon? I live quite close by." He had given him the directions and left.

That was his first visit to Fareed bhai's house, with his one and only old pair of scissors. Fareed bhai took one look at it and warned him that no gentleman will ever let him cut his hair with this pair of scissors. When Mehar-e-Alam told him his life story that how having lost everything in Lahore, somehow he managed to come here and is still struggling to earn money to buy new tools, Fareed bhai gave him a bag for the tools and twenty pounds to buy necessary things. He assured him that he may also get him some clients. Later he learnt that Fareed bhai comes from India but always showed keen interest in the happenings of Pakistan. Since then, Mehar-e-Alam visited his house many a times. Fareed bhai treats Mehar-e-Alam as an equal. One day he said," You know, to have a haircut at home is a true luxury in London. This reminds me of my childhood days." His wife is a bit reserve with Mehar-e-Alam. On one occasion he gave her a haircut as well, but she said," Your hands smell of raw meat. I don't want you to cut my hair in future."

Those days he worked in

the Halal shop for six days and on Sundays gave haircut to four or five clients. Though he used to wear plastic gloves in the shop while handling raw meat, wash his hands with soap ever so often but the smell seemed to have penetrated through the pores of his skin. It must have been his good fortune that one day he met Navin bhai and he offered him a job at his Hair & DVD Salon. Since then even Fareed bhai comes there whenever he needs a haircut.

When his tourist visa expired, it was Fareed Bhai who showed him the way forward that he should see a solicitor and apply for political asylum. So he met one solicitor who said that unless Mehar-e-Alam says that his life would be in danger if he returns to Pakistan, his case will not be strong enough. The truth is that if he returns, the biggest danger will be that his wife and kids could die of hunger. Somehow, the solicitor filed an application for asylum based on half truth which was rejected. He is tired of going to the solicitors. Once, somebody suggested that he should get married to a woman with a British passport. Of course it will cost him. He toyed with the idea for a long time. One day he discussed it with Fareed bhai.

"Don't be stupid. Home Office is well aware that many immigrants take this route to get permanent residence. This might complicate your case further."

His existence now is that of an illegal who lives here but does not exist. One of the benefits in this situation is that whatever he earns, he does not have to pay any tax on it. But he constantly lives in this fear that if somebody reports him, he could be deported to Pakistan. He tries to look after his health so that he may never have to go to a hospital which could expose his real status. By the grace of Allah, nobody has lodged any complaints against him.

It has been eleven years since he came to this country. He hasn't seen his family since. He had left his wife and four kids behind in the hope that once he settles in the UK, they would also join him here. But he can neither invite them nor can he travel to Pakistan himself because if he goes, he will not be able to return. He sends money every month and thanks to Allah, they are managing fine. However, there are times when he feels concerned for them. Last month his wife Saqina told him on phone that his elder son Pappu, who is now nearly seventeen, is keeping bad company and was arrested in a

theft case. Although he was later released but Mehar-e-Alam regularly prays to Allah after saying his Namaz, “O almighty Allah, please guide Pappu in the right direction, he should stay away from bad company, he should focus on his studies, respects his elders and make the family proud of him. Aameen.”

If Liberal Democratic Party comes into power, and if he will be allowed to invite one family member to UK, he will get Pappu here. People treat him with respect. Though he had already learnt to drive when he was in Pakistan but to get a UK driving license is a different ball game. He had to take lessons paying £10 per lesson. He passed the theory test in Urdu. He also passed the driving test the very first time.

Whenever he is free, he drives for Junaid’s mini cab service. It is good to have some extra earning. Whatever he earned In Parkistan was never enough. Undoubtedly, he has to work doubly hard here but he can’t complain that he doesn’t get a good return. How he has changed in the last eleven years!

To be continued in the next issue

Book Review

A Documentary Novel: The Elsewhereans

Jeet Thayil

Vatayanam’s Editor (English Section)
ajayjugran@gmail.com

In The Elsewhereans: A Documentary Novel Jeet Thayil draws on family history, memoir, and travel writing to construct a reflective account of movement, memory, and inheritance. The book weaves archival research into storytelling, blurring the boundaries between documentation and fiction rather than conforming to the expectations of a conventional novel. The text functions simultaneously as a family chronicle, a record of travel, and a

sustained reflection on how memory and belonging are shaped by movement across places.

The narrative centers on the lives of Thayil's parents, Ammu and George, whose experiences span multiple countries and cultural settings. Beginning with their marriage in Kerala in 1957, the narrative follows their movements from the backwaters of Kerala to cities such as Mumbai, Hong Kong, Paris, Berlin, and New York. Through a series of episodes and recollections, Thayil traces their experiences of migration, work, friendship, and family life. The book adopts a fragmented structure. Instead of moving in a straight chronological line, it presents memories, photographs, and reflections as separate yet connected pieces. This collage-like form reflects the instability of memory, which appears partial, uneven, and constantly reshaped by the passage of time.

The "Elsewhereans" are people who are always in motion and never fully settled in one place. Even in Kerala, Thayil's family sometimes feels like outsiders, while in other countries they remain caught between cultures. Home emerges in the narrative not as a fixed geographical location, but as something defined through remembered experiences and emotional attachment.

Thayil's prose is poetic without being overly sentimental; he often conveys deep emotion through small details and quiet observations. The atmosphere of the book is thoughtful and introspective, allowing readers to enter the emotional worlds of its characters. Many passages linger in the mind because of their simplicity and honesty, but the non-linear structure may require patience, as the narrative shifts between places, times, and perspectives.

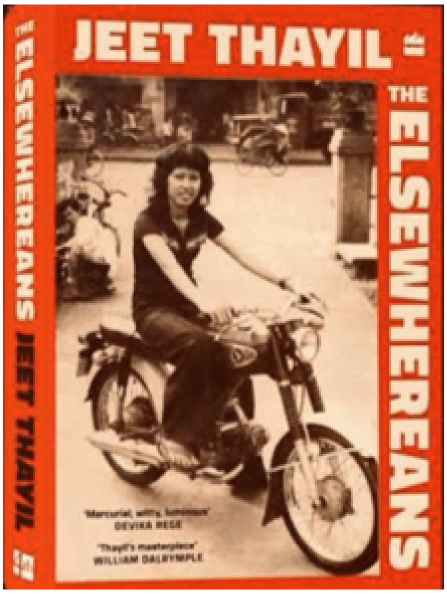

Another striking feature of The Elsewhereans is its blending of genres. It brings together elements of memoir, autofiction, travel writing, and archival research. Some readers may find this experimental form refreshing and original, while others may find it demanding. However, this very complexity reflects the layered nature of memory and identity that the book seeks to explore. Through personal

stories, Thayil also touches on broader themes such as colonial history, cultural fusion, and the search for belonging in a changing world.

Overall, The Elsewhereans stands out as an unconventional narrative that approaches family history and migration with both emotional sensitivity and critical restraint. Though it does not follow a traditional plot, it offers a rich and rewarding reading experience. By blending personal history with wider cultural reflections, Thayil creates a narrative that remains with the reader long after the final page.

Sunrise at Dong of Arunachal Pradesh

Dr. Ankit Agrawal

Jiwaji University, Gwalior
ankit_agr_gwl001@yahoo.co.in

While scrolling through Twitter oops ‘X’, I came across a tweet by the Chief Minister of Arunachal Pradesh Pema Khandu about the Dong Sunrise Festival which led me to explore Dong Valley and its nearby places online. One of my friends associated with Vivekananda Kendra Kanyakumari is also resident of Arunachal Pradesh. He further assured me this is the first occasion the state government aims for a grand success and offered useful travel

advice.

Dong is situated in the Dong Valley of the Walong region in Anjaw district of Arunachal Pradesh, right at the tri-junction of India, China, and Myanmar. Remarkably, this valley is considered blessed by Almighty God, as it receives the first sunrays in India, making it a truly divine and unique destination. In terms of distance, Dong lies approximately 315 km from Tinsukia town and about 560 km from the state capital, Itanagar. Clearly, while the journey may be long, the reward of witnessing the earliest sunrise in the country makes it an unforgettable experience.

My friend suggested that it would be better to hire a taxi and truly explore the beauty of Arunachal Pradesh along the way. In fact, he encouraged me not to limit the journey only to Dong, but also visit several remarkable destinations en route. Among them, the Namdapha National Park, Namsai, Hawai, and the sacred Parshuram Kund stand out as must-see places. Together, these sites weave a trail of natural wonders and spiritual experiences that enrich the journey toward Dong.

Initially, I had planned my journey in alignment with the Dong Sunrise Festival. However, due to some prior assignments, I realized that I would not be able to attend the event, so I chose to visit a week before the festival, ensuring that I could still experience the charm of Dong Valley while managing my commitments.

I started out from Tinsukia and made my way through several remarkable stops. On the first day of trip, I visited the serene Namsai Buddhist Monastery followed by the sacred Parshuram Kund and the charming town of Wakro next. After a long day of travel, I reached Walong (Tilam) late at night, which is just a bridge away from Dong. I checked into the Dong Resort, where I was warmly welcomed; I enjoyed a delicious meal and sat comfortably around the hearth, soaking in the cozy atmosphere. Before going to bed, I requested the hotel manager to confirm with the guide so that he could take us to the valley early next morning.

Trek to Dong Valley Sunrise Point

At precisely 2:00 AM, we woke up and prepared for the adventure ahead. We followed our guide, relying only on the faint glow of our torch/mobile phone lights. Step by step, we crossed a suspension bridge over the mighty Lohit River, moving carefully through the pitch darkness. The whistling wind and the echoing sound of the flowing river created an atmosphere both thrilling and unforgettable.

After passing through Dong village, we finally arrived at the main entrance of the trekking area, where we completed our registration and paid the

necessary fees.

From this point onward, the trek became a steady climb - one step after another - guided only by the faint light of our mobile phones. Gradually, the stairs seemed endless, and so did the darkness. Yet, we kept moving forward, deeper into the lap of nature. Our first stop came at a grassy field where a small hut stood. In the stillness of the night, we could barely make out its shape, as the darkness concealed everything beyond.

Sunrise at Dong

As we moved forward, the next stretch of trek became noticeably more difficult. This time, there were no stairs to guide us - only narrow, uneven paths. Our companions were scattered along the way, some carefully wading through the wet grass. In the distance, only a faint light twinkled, offering a small sense of direction. Through it all, we

continued onward, invoking superpowers with every step for strength and courage. By around 4:00 AM, we finally reached our destination. To our relief, the guide had already lit a bonfire, which was just enough to ward off the biting cold. At that moment, it felt as though we had stepped into a different and wondrous world, far removed from everything familiar.

Soon after, as we gathered around the warmth of the fire, the horizon began to change. The darkness gave way gradually, and the first light of dawn appeared. A little while later, the sun began to rise, painting the sky with hues that made our entire journey worthwhile. We stood in one spot; eyes fixed on the breathtaking wonders of nature. Far in the distance, the sun's rays began to illuminate the snow-capped peaks of the spectacular Himalayas. Gradually, the reddish glow intensified. The icy winds reached their peak, adding both chill and thrill to the moment. The colourful prayer-flags of the Buddhist faith fluttered, infusing the scene with an intensive energy - blending the nature and spirituality together. By around 5:15 AM, daylight had fully arrived, revealing even more of the majestic surroundings. From this vantage point, the Myanmar border region was clearly visible.

Justice for Zubeen at Dong

Interestingly, someone had placed a piece of cloth in memory of Zubeen Garg - the 'Heartbeat of Assam'.

One after another, tourists began writing their heartfelt messages on it, turning the spot into a tapestry of collective emotions and shared experiences. At this point, the place looked even more beautiful than paradise itself. Surrounded by majestic pine trees, lush green meadows and sweeping valleys that seemed endless. By 6:00 AM, we began our return journey; however, the descent was not as easy as the climb up. In fact, the valley we had ascended in darkness now revealed its rugged terrain, making the path both challenging and adventurous. Step by step, we carefully made our way down, savouring the raw beauty of nature. Eventually, we reached back to our destination, carrying with us memories of a journey that was as demanding as it was rewarding.

By around 8:00 AM, we were finally back down. Soon after, it was time to refresh ourselves, so we headed to a large, beautiful hot water spring for a rejuvenating bath.

Dong, Walong, and Tilam are three villages located close to each other. Walong and Tilam are situated on one bank of the Lohit River, while Dong is on the other side. Tourists who wish to witness the sunrise from the Dong valley often stay in these three villages. They can find accommodation in tents, hotels, and homestays with basic amenities.

I have traveled across many parts of India, yet the Northeast—though far away—feels close to the heart, where bonds with people form effortlessly. Each of us should, at least thrice in our lifetime, journey to different corners of this enchanting region.

Children’s Science Fiction

Harry the Water Droplet and the Hydrological Circle 30/10/20

Avaneesh Gunjal

Year 7 student at Kingswood House School, Epsom
gunjal.akash@gmail.com

Once upon a time, there was a water droplet called Harry. The other droplets nicknamed him ‘Chill’ because he relaxed in all the puddles in the rain you could find. However, sunbathing was his favourite hobby. He spent all his time lying down on the concrete, getting as much sunlight as he could. However, one day, something mysterious happened…

Harry suddenly rather felt he was scorching hot. It was awfully hot today, and Harry spent 2 hours sunbathing! Soon, he began to levitate. As he began floating upwards, he met his friend Lucas in the sky with him. “What is happening to me!?” cried Harry.

“It’s a miracle! You’re evaporating” yelled Lucas, clearly enjoying every moment of this, “But I am starting to feel badly cold.”

Lucas was right. It was getting even more chilly as soon as they rose further and quicker.

“Huh, we’re condensing which means we’re going to go into a warmer place soon,” said Lucas

“As warm as the sun?” said Harry with a hint of excitement to his voice

“No,” answered Lucas.

They were soon stuffed with other water droplets, squished up together in a cloud. The other droplets were angrily shouting things at each other like, “Move!”, “You spilled my lemonade!”, “Can everyone let me through, I need to go to the toilet!”

Soon, the giant cloud hovered towards an ocean and released the droplets, crowd by crowd, like they were jumping off a plane to skydive. Everyone was screaming and yelping with fear, but Lucas was laughing as Harry fell. “WHY ARE YOU LAUGHING!?” screamed Harry.

“Its precipitation Harry, no need to worry!” replied Lucas calmly,

"we'll be landing in the ocean by the time we fell another 10,000 feet."

The 10,000 feet soon became 5,000 feet. Then 2,500 feet, 1,250 feet, before reaching to 625 feet, then 500 feet, 250 feet, 10 feet, 5 feet … 1 foot

PLOP!

Harry and Lucas were now in the sea! "I'm home!" cried Harry happily. He and Lucas talked for a while and watched the other droplets go through the same process as they did.

Some were going into the ground when they precipitated.

"What's with those guys?" questioned Harry.

"They're infiltrating," said Lucas, "They're moving through the soil and into the ocean. That process is called throughflow." "Hope they take a shower afterwards!" sighed Harry.

Soon he saw some other water droplets evaporated just like he previously did, except they are in the trees.
"They're evaporating, aren't they?" asked Harry.

"Yes, they are," said Lucas, "However when they evaporate in trees, it's called transpiration."

Soon, some more droplets precipitated however they landed in the trees and couldn't make it to the ocean. "What happened?" said Harry.

"That was interception," said Lucas, "it's where trees can stop water droplets from going down to reach the ocean."

"I do feel sorry for those people." said Harry, feeling rather bad for the other drops.

Soon, the final group precipitated, however they didn't intercept. Instead, they fell on the ground and moved across the ground to get to the stream.

"How did they not intercept with the trees?" said a rather befuddled Harry.

"That was a surface runoff," said Lucas, "it's where the water droplets form as a stream and flow down to reach the ocean."

"Like a water slide!" exclaimed Harry. "Exactly!" said Lucas. "That would've been fun." said Harry.

"I know," said Lucas, "Oh! That reminds me. We're doing the same process again in 10 minutes."

"Can't I have a break for once?" said Harry, feeling rather disappointed.

आपने लिखा है

"पश्चिम एशिया महाद्वीप में किस्सागोई की दास्तानगोई : कुछ यादें, कुछ हकीकत" अत्यंत सराहनीय, शोधपरक और विचारोत्तेजक प्रयास है। नासिरा शर्मा पश्चिम एशिया की भाषा, साहित्य, राजनीति और इतिहास की गहन जानकारी रखती हैं।

नासिरा शर्मा किस्सागोई परंपरा के गहरे प्रभाव को भी रेखांकित करती हैं तथा अनेक ऐसे ऐतिहासिक तथ्यों को उजागर करती हैं, जो सामान्यतः पाठकों की दृष्टि से ओझल रहे हैं। यह कृति न केवल ज्ञानवर्धक है, बल्कि पाठक की दृष्टि को भी व्यापक बनाती है। नासिरा शर्मा जी को बहुत बहुत साधुवाद उन्होंने बिल्कुल नये शिल्प के साथ एक पुरानी विधा को फिर से जीवंतता प्रदान की हैं। जिसके लिए उनकी जितनी भी प्रशंसा की जाए कम है।

शैलेंद्र अस्थाना
जमशेदपुर, झारखंड

बहुत अच्छा अंक। कुशल संपादन, विषय वस्तु में विविधता तथा सुन्दर पृष्ठ संयोजन हेतु हार्दिक बधाई और शुभकामनाएँ ।

डॉ. अनीता पंडा 'अन्वी'
aneeta.panda@gmail.com

दिव्या जी,
अभी अभी देखा और कुछ कुछ पढ़ा। रूसी कविताओं से लेकर हरियाणवी बोली तक को समेटे हुए हमारी पत्रिका देख पवन मंत्र-मुग्ध हो गया.

पवन कुमार घनौरी
लंदन

आदरणीय सम्पादक महोदया,

नववर्ष के शुभ अवसर पर आपके द्वारा भेजी गई पत्रिका प्राप्त हुई। यह मेरे लिए एक आत्मीय और सुखद अनुभव रहा। आपके सम्पादकीय मार्गदर्शन में प्रकाशित इस सुंदर पत्रिका को देखकर मन प्रसन्न हो उठा। इसके लिए मैं हृदय से आपका आभार व्यक्त करता हूँ।

पत्रिका में प्रकाशित कुछ कविताओं और रचनाओं को देखने का अवसर मिला। शब्दों की सुघड़ बुनावट, भावों की गहराई और प्रस्तुति की सादगी ने यह स्पष्ट कर दिया कि यह प्रयास केवल प्रकाशन तक सीमित नहीं है, बल्कि साहित्यिक संवेदनाओं को सहेजने और आगे बढ़ाने की सार्थक कोशिश है। विविध विधाओं में रची गई रचनाएँ पाठक को सुखद अनुभूति प्रदान करती हैं।

इतने विद्वान रचनाकारों की सहभागिता से सजी इस पत्रिका को मैं आदर के साथ सहेजकर रखना चाहूँगा।

सादर
डॉ. अशोक शर्मा

वातायन : साहित्य का जीवंत संवाद

वातायन पत्रिका का जनवरी–मार्च 2026 अंक पढ़ते हुए यह अनुभूति लगातार बनी रहती है कि यह केवल रचनाओं का संकलन नहीं, बल्कि समकालीन हिंदी साहित्य का एक सजीव संवाद–मंच है। आवरण पृष्ठ पर उकेरी गई रंगों की मुक्त, अमूर्त और गतिशील छवियाँ ही यह संकेत दे देती हैं कि भीतर पाठक को स्थिर नहीं, बल्कि विचारोत्तेजक और बहुआयामी साहित्यिक अनुभव मिलने वाला है। यह आवरण किसी एक अर्थ में बँधता नहीं, ठीक वैसे ही जैसे वातायन की रचनाएँ किसी एक विधा या दृष्टि तक सीमित नहीं रहतीं। अनुक्रम पर नज़र डालते ही स्पष्ट हो जाता है कि यह अंक सोच–समझकर रचा गया है। कहानी, कविता, ग़ज़ल, लघुकथा, व्यंग्य, आलोचना, अनुवाद, साक्षात्कार और अंतरराष्ट्रीय साहित्य —हर विधा अपनी पूरी गरिमा और प्रतिनिधित्व के साथ उपस्थित है। यह संतुलन आज के साहित्यिक परिदृश्य में दुर्लभ होता जा रहा है, जिसे वातायन ने सधे हुए संपादकीय विवेक से साधा है।

इस अंक का संपादकीय विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसमें केवल अंक का परिचय नहीं, बल्कि साहित्य को मानवीय, संवेदनशील और उत्तरदायी कर्म के रूप में देखने की दृष्टि उभरती है। संपादकीय पंक्तियों में यह भाव स्पष्ट है कि साहित्य केवल सौंदर्य का उपभोग नहीं, बल्कि समय के साथ संवाद करने का माध्यम है। यही दृष्टि पूरे अंक में एक अदृश्य सूत्र की तरह बहती है।

सूर्यबाला जी की कहानी 'वाचाल सन्नाटे' इस अंक की सशक्त उपलब्धि है। यह रचना शब्दों से अधिक उनके बीच के मौन को अर्थ देती है। कहानी में संवाद जितना बोलता है, उससे कहीं अधिक वह अनकहा बोलता है। 'वाचाल सन्नाटा' दरअसल हमारे समय का वह अंतर्विरोध है, जहाँ शोर बहुत है, पर संवेदना का स्पर्श दुर्लभ। सूर्यबाला जी की भाषा सधी हुई, अनुभवजन्य और आत्मीय है—कहानी पढ़ते हुए पाठक स्वयं उस सन्नाटे का हिस्सा हो जाता है।

इस अंक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ विविध स्वरों के बावजूद कोई वैचारिक बिखराव नहीं है। हर रचना अपने ढंग से समय, समाज और मनुष्य से संवाद करती है। वातायन का यह अंक बताता है कि साहित्य आज भी प्रश्न करता है, संवेदना जगाता है और पाठक को भीतर तक आंदोलित करने की क्षमता रखता है।

अंततः, वातायन केवल एक पत्रिका नहीं, बल्कि साहित्यिक परिवार होने का दावा सही अर्थों में सिद्ध करता है—जहाँ लेखक, पाठक और संपादक तीनों एक साझा बौद्धिक यात्रा में सहभागी हैं।

संपादक मंडल को इस सशक्त, विचारोत्तेजक और सुरुचिपूर्ण अंक के लिए साधुवाद।

डॉ मुकेश असीमित

वातायन अंक वाकई झरोखे से आई मद मस्त झोंकों से खुशबू बिखेर गई। आदरणीया दिव्या जी व संपादक मंडली को एक और सुंदर अंक के प्रकाशन के लिए बधाइयां! बहुत सुंदर रचनाएं। एक ही साथ सारा पढ़ती चली गई। सुबह का उगता, चमकता, अभिवादन पाता सूरज और ढलता निढाल सूरज, स्त्री जीवन के वाचाल सन्नाटे कह गया। समाज और बच्चों के बीच तारतम्य बैठाती, भूल भुलैया वाली उम्र जीवंत चलचित्र सी हर किसी के जीवन को छूती चली गई। रिश्तों की गरिमा, यात्रा, बड़े घर की बहू, गिरगिट, उपवास, स्त्री, स्त्री होने के सिवा मनुष्य भी है आदि हमारी सामाजिक सोच के दर्पण हैं। नई प्रेरणा और नई दृष्टि, नए विचार देती इस पत्रिका की सभी रचनाएं पठनीय हैं।

नील मणि

वातायनम (जनवरी–मार्च 2026, अंक–04) का यह अंक अपने आवरण से ही सृजनात्मक ऊर्जा का संकेत देता है। रंगों की मुक्त अभिव्यक्ति और अमूर्तता समकालीन संवेदना को प्रतिबिंबित करती है। सामग्री-सूची में कविता, कहानी, नाटक, आलोचना, अनुवाद, स्त्री-विमर्श, अंग्रेज़ी साहित्य तथा 'Artist of the Month' जैसे विविध और संतुलित खंड पत्रिका की व्यापक दृष्टि को प्रमाणित करते हैं।

विशेष रूप से समकालीन हिंदी साहित्य के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं और अंग्रेज़ी रचनाओं का समावेश 'वातायनम्' को वैश्विक साहित्यिक संवाद का सशक्त मंच बनाता है। स्त्री साहित्य और हरियाणवी साहित्य जैसे खंड पत्रिका की सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिबद्धता को रेखांकित करते हैं। अनुवाद और आलोचना खंड पाठक की बौद्धिक जिज्ञासा को समृद्ध करते हैं।

समग्रतः यह अंक पाठक को केवल रचना-पाठ तक सीमित नहीं रखता, बल्कि उसे विचार, संवेदना और कला—तीनों स्तरों पर सक्रिय सहभागिता के लिए प्रेरित करता है। 'वातायनम्' का यह अंक साहित्यिक गुणवत्ता, वैचारिक संतुलन और सौंदर्यबोध—तीनों का सशक्त संगम है।

डा. ममता जैन